

# શ્રીજૈન સત્ય પ્રકાશ

જૈન તત્ત્વજ્ઞાન, જૈન સાહિત્ય, જૈન કળા અને જૈન  
ધર્મસંસ્થાના વિષયો ચર્ચાતું, શ્રી જૈનધર્મ સત્યપ્રકાશક  
સમિતિનું પ્રતિકાર વિષયક માસિક મુખ્યપત્ર.



તંત્રી :

શાહ ચીમનલાલ ગોકળદાસ

વર્ષ ૨ ]

ક્રમાંક ૨૩

[ અંક ૧૧

SHREE MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA

Koba, Gandhinagar - 382 007.

• Ph. : (079) 23276252, 23276204-05

Fax : (079) 23276249

For Private And Personal Use Only

# શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

( માસિક પત્ર )

## વિષય-દર્શન

|                                |  |                   |
|--------------------------------|--|-------------------|
| ૧ શ્રી સરસ્વતી વિશિકા          | : આચાર્ય મહારાજ શ્રીમદ્ વિજયપદ્મસૂરિજી | : ૫૫૧             |
| ૨ દિગંબર શાસ્ત્ર કૈસે વને ?    | : મુનિરાજ શ્રી દર્શનવિજયજી             | : ૫૫૨             |
| ૩ સમ્યગ્દર્શન                  | : આચાર્ય મહારાજ શ્રીમદ્ વિજયપદ્મસૂરિજી | : ૫૫૬             |
| ૪ ગુજરાતની જૈનાશ્રિત કળા       | : શ્રીયુત સારાભાઈ મણિલાલ નવાય          | : ૫૬૦             |
| ૫ ચૈત્યવદનમ્                   | : પંડિત અમૃતલાલ મોહનલાલ સંઘવી          | : ૫૬૪             |
| ૬ હુતપ્રાયઃ જનગ્રન્થોં કી સૂચિ | : શ્રીયુત અગરચંદ્રજી નાહટા             | : ૫૬૭             |
| ૭ દ્વિતિયોની ઉત્પત્તિ          | : આચાર્ય મહારાજ શ્રીમત્ સાગરાનંદસૂરિજી | : ૫૫૫             |
| ૮ પુરાતન ઇતિહાસ અને સ્થાપત્ય   |  |                   |
| (૧) માંડવગઢ સંબંધી લેખ         | : શ્રીયુત અગરચંદ્રજી નાહટા             | : ૫૮૦             |
| (૨) પ્રચીન લેખ સંગ્રહ          | : મુનિરાજ શ્રી જયંતવિજયજી              | : ૫૮૨             |
| ૯ તરંગવતીની કથા                | : મુનિરાજ શ્રી ન્યાય વજયજી             | : ૫૮૪             |
| સમાચાર :                       |  | પૃષ્ઠ ૫૯૦ ની સામે |

|   |  |   |
|---|--|---|
| <p><b>: વિજ્ઞાપ્તિ :</b></p> <p>જે પ્રજ્ઞ મુનિરાજને “શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ” મોહલામાં આવે છે, ત્યાંએ પોતાના વિહારાદિકતા કારણે બહલાતું કરનારું દુરૂંક મહિનાની સુદી ત્રીજ પહેલાં અમને લખી આપવા કૃપા કરવા, તેથી આ વર્ષે ગેરવહી નેવાં, વખતપર મળી શકે.</p> | <p><b>વાર્ષિક લવાજમ :</b></p> <p>સ્થાનિ: ૧-૮-૦</p> <p>બહારગામનું</p> <p>૨-૦-૦</p> <p>હુટક અંક</p> <p>૦-૩-૦</p> | <p><b>: નેહંત્ર છે</b></p> <p>‘શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ’ ના પ્રથમ વર્ષના ૨, ૩, ૭, ૮, અંકોની જરૂર છે. જેઓ તે મોકલશે તેનો સાબાર સ્વીકાર કરીને બહલામાં તેટલા અંકો મજરે આપવામાં આવશે.</p> |
|---|--|---|

મુદ્રક અને પ્રકાશક: ચીમનલાલ ગાકળદાસ શાહ, મણિ મુદ્રણાલય.

કાળુપુર, ખજુરીની પોળ, અમદાવાદ.

પ્રકાશન સ્થાન: શ્રી જૈનધર્મ સત્યપ્રકાશક સમિતિ કાર્યાલય,

જેશિંગભાઈની વાડી, ઘીકાંટા, અમદાવાદ.

णमो त्थु णं भगवओ महावीरस्स

सिरि रायनयरमज्जे संमीलिय सव्वसाहुसंमइयं । पत्तं मासियमेयं भव्वाणं मग्गयं विसयं ॥१॥

# श्री जैन सत्य प्रकाश

अण्णाणग्गहदोसगत्थमइणा कुव्वंति जे धम्मिए,  
अक्खेवे खल तेसिमागमगयं दाउं विसिट्ठुत्तरं ॥  
सोउं तिथ्थयरागमत्थविसए चे भेऽहिलोसा तथा,  
वाइजा प्पवरं पसिद्धजइणं सच्चप्पयासं सुया ॥ २ ॥

पुस्तक २

अंक ११

विक्रम संवत् १९६३ :  
जेठ शुक्ला चतुर्थी

वीर संवत् २४१३  
रविवार

: संन १९३७  
जून १३

## श्री सरस्वती विंशिका

कर्ता—आचार्य महाराज श्रीमद् विजयपद्मसूरिजी

[ गतांकथी पूर्ण ]

( आर्यावृत्तम् )

मज्झ मणं तइयपयं—बुए कया रायहंसदिट्ठंता ॥  
होहिइ लीणं वाणि ! फुडं वएज्जा पसीऊणं ॥ १९ ॥  
णयणेउण्णं तेसिं, सुलहं वरसत्तभंगविण्णाणं ॥  
सिरिसुयदेवी जेसिं, सययं हिययं विहूसेइ ॥ २० ॥  
रससंचारणविउसिं, चउब्भुयं हंसवाहणं सुब्भं ॥  
कुंदिंदुहम्मवासं, सुयदेविं भगवइं थुणमि ॥ २१ ॥  
सुयदेवयाइ भत्ती, उप्पज्जइ पुण्णपुंजकलियाणं ॥  
मंगलमयसिरितुट्ठी, संपज्जउ संभयंताणं ॥ २२ ॥  
गुणणंदणिहिंदुसमे, माहेऽसियसत्तमीइ गुरुवारं ॥  
पुण्णपइट्ठादियहे, अट्टमचन्दप्पहस्स सुया ॥ २३ ॥  
पवरवदरखागामे, गुरुवरसिरिणेमिसूरिसीसेणं ॥  
पउमेणायरिणं, सरस्सईवीसिया रइया ॥ २४ ॥  
रयणमिमं विण्णत्तो, मोक्खाणन्देण हं समकरिस्सं ॥  
भणणाऽऽयण्णणभावा, संघग्गिहे संपया पुण्णा ॥ २५ ॥ (संपूर्ण)

# दिगम्बर शास्त्र कैसे बने ?

लेखक—मुनिराज श्री दर्शनविजयजी

( गतांक से क्रमशः )

## प्रकरण १२—आ० पूज्यपाद ( विद्यानन्दीजी )

दिगम्बर साहित्य के निर्माण में आ० कुन्दकुन्द के बाद दूसरा नम्बर स्वामी पूज्यपाद का ही आता है। यद्यपि आपके पहिले के कई आचार्यों के ग्रन्थ दिगम्बर सम्प्रदाय में मान्य हैं, किन्तु हम पूर्व के प्रकरण में सप्रण बता चुके हैं कि उन ग्रन्थों के प्रणेता श्वेतांबर आचार्य थे; सिर्फ अपनी मान्यता से प्रतिकूल न होने के कारण ही दिगम्बर संघ ने उन्हें अपनाया है। उन ग्रन्थों में श्वेतांबरत्व का झलक स्पष्ट है।

आचार्य पूज्यपाद दिगम्बर आचार्य हैं, और आप अपने ढंग के अनोखे विद्वान् हैं। आपके ग्रन्थों में दिगम्बर मतसम्मत कुछ वस्तु वर्णन भी है।

आपका दूसरा नाम आचार्य विद्यानन्दी है।

श्रवणवेङ्गुल शिलालेख नं० ४०, १०५ और १०८ में आ० समन्तभद्र के पश्चात् आपका नाम उल्कीर्ण है। नं० ४० में तो आपके ५ ग्रन्थों का भी उल्लेख है। आपका समय काल ठीक विक्रम की छठी शताब्दी का पूर्वार्ध है।

आ० देवसेन लिखते हैं कि—वि० सं० ५२६ में आ० पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दी ने द्राविड मथुरा (मदुरा) से द्राविड संघ चलाया, जिनके दूसरे नाम हैं “द्रामिल संघ” “पुन्नाट संघ”। आ० द्वितीय जिनसेनसूरि, वादिराजसूरि और श्रीपालदेव ये सब पुन्नाट संघ के आचार्य हैं। नन्दी संघ व अरुगल शाखा भी इस संघ के ही अंग हैं। किसी स्थान में स्वामी समन्त को अरुगल शाखा के आचार्य माने हैं।

श्रीयुत नाथूराम प्रेमोजी लिखते हैं कि—इस (द्राविड संघ) की उत्पत्ति का समय है वि० संवत् ५२६ का और इसके उत्पादक बताये गये हैं आचार्य पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दी। दक्षिण और कर्णाटक के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठक ने किसी कनडी ग्रन्थ के आधार से मालूम किया है कि पूज्यपाद स्वामी दुर्विनीत नाम

के राजा के समय में हुए हैं। दुर्विनीत राजा उनका शिष्य था। दुर्विनीत ने विक्रम संवत् ५३७ से ५७० तक राज्य किया है। वज्रनन्दी यद्यपि पूज्यपाद के शिष्य थे, फिर भी सम्भव है कि उन्होंने उन्हीं के समय में अपना संघ स्थापित कर लिया हो। ऐसी दशा में ५२६ के लगभग उनके द्वारा द्राविड संघ की उत्पत्ति होना ठीक जान पड़ता है।

— दर्शनसार की प्रस्तावना, पृ० ३७.

अर्थात् आ० पूज्यपाद स्वामी विक्रम संवत् ५२६ व ५३५ के करीब में विद्यमान थे। आपने जैनेन्द्र व्याकरण, तत्त्वार्थ सूत्र के उपर सर्वार्थसिद्धि टीका, जैनाभिषेक छन्दशास्त्र और समाधि शतक स्वास्थ्य ग्रन्थ बनाये हैं। उनके समय तक वा० उमास्वातिजी के तत्त्वार्थाधिगम सूत्र पर सिर्फ स्वोपज्ञ भाष्य था, और पू० वाचकजी श्वेतांबर थे, अतः दिगम्बर विद्वानों ने उन मूल सूत्र और भाष्य का अब तक स्वीकार नहीं किया था। आ० पूज्यपाद ने दिगम्बर संघ में इस शास्त्र का प्रचार लाभप्रद माना और आपने कुछ परावर्तन के साथ उस भाष्य के अनुकरण सी सर्वार्थसिद्धि नामक टीका बना ली। आपके इस प्रयत्न के फल स्वरूप मूल तत्त्वार्थ सूत्र दोनों सम्प्रदाय का मोक्ष-शास्त्र बन गया। आपने सूत्रों का परिवर्तन भी बहुत कम प्रमाण में ही किया है। इस तरह आपने दिगम्बर समाज में एक सिद्धांत-शास्त्र तैयार कर दिया और दिगम्बर समाज में भी तत्त्वार्थ सूत्र आगम के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

श्वेतांबर और दिगम्बर समाज में द्रव्य लिङ्ग भेद के विषय में तीव्रतर मतभेद है। श्वेतांबर समाज अनेकान्त दृष्टि से पुरुष, स्त्री व नपुंसक तथा स्वलिङ्ग, परलिङ्ग और गृहस्थ लिङ्ग इन सभी द्रव्य लिङ्गों को भाव लिङ्ग की मौजूदगी में मोक्ष के योग्य मानता है, जब दिगम्बर समाज सिर्फ पुरुष और साधुलिङ्ग में ही मोक्ष की योग्यता मानता है। आपने एकांत लिङ्गाग्रही को सख्त फटकारा है, और भावलिङ्ग को ही प्रधान मानने का शिक्षण दिया है। जैसा कि —

येनात्मनाऽनुभूयाऽहमात्मनैवाऽऽत्मनात्मनि ॥

सोहं न तन्न सा नाऽसौ, नैको न द्वौ न वा बहु ॥२३॥

आत्मा आत्मस्वरूप के अनुभव से आत्मदशा में स्थित होकर आत्मभावको पाता है, तब उसे ज्ञान होता है कि—मैं न पुरुष हूं, न नपुंसक हूं, न स्त्री हूं, न एक हूं, न दो हूं, न अनेक हूं, मतलब आत्मा आत्मा ही है। मोक्ष में जानेवाला वही है।

त्यक्तैवं बहिरात्मानं ॥२७॥

मोक्ष-मार्ग में बहिरात्माकी चर्चा करनेवाले इस कथन से भी बोधपाठ ले सकते हैं ।

**यो न वेत्ति परं देहात् ॥ ३३ ॥**

मोक्ष-मार्ग में पुरुष शरीर, स्त्री शरीर की चर्चा करनेवाले इस श्लोक से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञानी पुरुष के वचन निष्फल या निरपेक्ष नहीं होते हैं।

**परत्राहं मतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम् ॥४३॥**

मेरा शरीर, मेरा वस्त्र-यह विचारणा ही आत्मा को बंधन कारक है, उनके होने पर भी उन्हें अपना मानना नहीं चाहिये ।

**दृष्यमानमिदं मूढः खिलिङ्गमवबुध्यते ॥४४॥**

बेचारा कमअकल आदमी मैं पुरुष हूं, मैं स्त्री हूं, मैं नपुंसक हूं ऐसा मानता है, जब की मोक्षगामी आत्मा इन लिंगों से रहित है। उसके लिङ्ग ज्ञानादि हैं।

**पूर्वविभ्रमसंस्काराद्भ्रान्तिं भूयोऽपि गच्छति ॥४५॥**

विभाव का विचार करनेवाला जीव ज्ञानी होने पर भी मैं पुरुष हूं, मैं ब्राह्मण हूं, यह शूद्र है, इस विचारणा से पुनः भ्रम में फस जाता है ।

**शरीरे वाचि चात्मानं० ॥५४॥**

शरीर को आत्मा मानना यह अज्ञानता है। जीव शरीर से भिन्न है फिर भी पुरुष देह से मोक्ष होता है, स्त्रीत्वांगको दूर करने से स्त्री देह से भी मोक्ष है यह बात कहना मात्र है ।

**जीर्णे वस्त्रे यथात्मानं, न जीर्णं मन्यते तथा ।**

**जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥६४॥**

इस आशय के और भी उत्तरार्ध श्लोक बन सकते हैं कि—

**स्त्रियो देहे तथाऽऽत्मानं, न स्त्रियं मन्यते बुधः ॥**

**शूद्रदेहे तथाऽऽत्मानं, न शूद्रं मन्यते बुधः ॥**

**नयत्यात्मानमात्मैव, जन्म निर्वाणमेव च ॥७५॥**

आत्मा ही आत्मा को संसार में फसाता है और मोक्ष में ले जाता है ।

**लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो भवः ।**

**न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्, ते ये लिङ्गकृताग्रहाः ॥८७॥**

**जातिर्देहाश्रिता दृष्टा ॥८८॥**

इस श्लोक से स्पष्ट है कि—ब्राह्मण ही मोक्ष में जा सकता है, पुरुष ही मोक्ष में जा सकता है, नग्न ही मोक्ष में जा सकता है इत्यादि लिङ्ग के आप्रह से संसार बढता है ।

जातिलिङ्गविकल्पेन, येषां च समयाग्रहः

तेऽपि न आप्नुवन्त्येव, परमं पदमात्मनः ॥८९॥

मैं ब्राह्मण हूँ, मैं नग्न साधु हूँ ऐसा आग्रह मोक्ष का बाधक है। (समाधिगतक) किसी विद्वान ने एक जाली ग्रन्थ बनाकर इन आचार्य के नाम पर भी चडा दिया है। उस ग्रन्थका नाम है “पूज्यपाद उपासकाचार”। सम्पूर्ण ग्रन्थ कृत्रिम होने पर भी उसकी भिन्न भिन्न प्रतियों को श्लोक संख्या में भी बड़ा अंतर है—बड़ी अव्यवस्था है। इस के लिये पं० जुगलकिशोरजी मुल्तारने चर्चा की है, और अंत में लिखा है कि—

“इससे, पर्याय नाम की वजह से यदि उनमें से ही किसोका ग्रहण किया जाय तो कीसका ग्रहण किया जाय, यह कुछ समझ में नहीं आता”। (उनके) “साहित्य के साथ मिलान करने पर इतना जरूर कह सकते हैं कि यह ग्रन्थ उक्त ग्रन्थों के कर्ता श्री पूज्यपाद आचार्य का तो बनाया हुआ नहीं है”। “इस प्रकार के विभिन्न कथनों से भी यह ग्रन्थ: सर्वार्थसिद्धि के कर्ता श्री पूज्यपाद स्वामी का बनाया हुआ मालुम नहि होता, तब यह ग्रन्थ दूसरे कौनसे पूज्यपाद आचार्य का बनाया हुआ है, और कब बना है, यह बात अवश्य जानने के योग्य है। और इसके लिये विद्वानों को कुछ विशेष अनुसन्धान करना होगा। मेरे ख्याल में यह ग्रन्थ पं० आशाधर के बाद का—१३ वीं शताब्दि से पीछे का—बना हुआ मालुम होता है। परन्तु अभी मैं इस बात को पूर्ण निश्चय के साथ कहने के लिए तय्यार नहीं हूँ”।

—ग्रन्थपरीक्षा, भा० ३

अर्वाचीन ग्रन्थकारों ने पूज्यपाद के नाम से भी ठीक ठीक लाम उठाया।

सुअखंधो, श्रुतावतार वगैरह में सिद्धांत और उनके निर्माता का इतिहास है। उस इतिहास में आपका नाम और आपके ग्रन्थ का कोई इशारा नहीं है। यह एक विचारणीय समस्या है। दिगम्बर समाज में आ० पूज्यपाद समर्थ ग्रन्थकार हुए हैं।

(कमराः)

### सूचना

परम पूज्य आचार्य महाराज श्री विजयलक्ष्मिसूरि-  
ने “प्रभु महावीरनुं तत्त्वज्ञान” शीर्षक ग्रन्थ लेख  
तथा परम पूज्य आचार्य महाराज श्री विजयलक्ष्मिसूरि-  
सूरिने “समीक्षाभ्रमाविष्करण” शीर्षक ग्रन्थ  
लेख आ अंशमां आपी शकथो नथी.

# સમ્યગ્દર્શન

લેખક

આચાર્ય મહારાજ શ્રીમદ્ વિજયપદ્મસૂરિજી

**શ્રી** તીર્થંકર દેવે સુખાભિલાષવાળા છતાં જ્ઞાન સમજાણથી કલેશમય ચાર ગતિરૂપ સંસારમાં ભમતા સર્વ ભવ્ય જીવોના કલ્યાણને માટે ફરમાવેલા મુક્તિરૂપિ મહેલમાં વ્યવસ્થાને નીસરણી જેવા રૂડા (૧) દર્શન, (૨) જ્ઞાન અને (૩) ચારિત્રમાં જે દર્શન ગુણની પ્રધાનતા જણાવી છે, તે ઉચિત છે, કારણ કે સમ્યગ્દર્શનથી ભ્રષ્ટ (પતિત) થયેલો જીવ સર્વ ગુણોથી ભ્રષ્ટ થયો, એમ કહેવાય. તેવા જીવો નિર્વાણ પદ ન જ પામે. (દ્રવ્યથી) ચારિત્ર વિનાના જીવો મુક્તિ પદ પામે, પણ દર્શન વિનાના જીવો તો ન જ પામે. જુઓ :

**દંસણ મદ્દો મદ્દો, દંસણમદ્દસ્સ નત્થિ નિવ્વાણં ॥**

**સિજ્ઞંતિ ચરણરહિયા, દંસણરહિયા ન સિજ્ઞંતિ ॥૧॥**

મિથ્યાત્વમોહનીય અને અનન્તાનુભંધિ ક્રોધ, માન, માયા, લોભના ઉદયથી દરેક જન્મસ્થ સંસારી જીવને અનાદિ સંસારમાં અનંતીવાર ભટકવું પડ્યું છે. તેમાં ફેટલા એક ભવ્ય જીવો, આત્મવીર્યની પ્રખલતા, ભવ્યત્વ દશાનો પરિપાકકાલ, સાત પ્રકૃતિયોના ક્ષયોપશમ, ક્ષય, ઉપશમ, વગેરે કારણોદ્વારા યથાપ્રવૃત્તિ આદિ ત્રણ કરણો કરી સમ્યગ્દર્શનરૂપ ભાવ રત્ન પામે છે. આ ગુણથી, “શ્રીવીતરાગ પ્રભુએ કહેલા પદાર્થો સત્ય છે, અને શંકારહિતપણે માનવા લાયક છે” આવી શ્રદ્ધા પ્રકટે છે. આ બાબત વ્યાખ્યા પ્રસન્નિ (શ્રીભગવતીજી) સૂત્રમાં કહ્યું છે : “તમેવ સત્ત્વં ગિસ્સંકં જં જિણેહિં પવેદ્દય” આવા જીવોને અર્ધ? પુદ્ગલપરાવર્ત કાલથી અધિક સંસાર હોતો નથી. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે સમ્યગ્દર્શન ગુણથી પતિત થયેલા જીવો દર્શન ગુણની સાથે રહેનારા, જ્ઞાન અને ચારિત્રથી પણ પતિત થાય છે. એ સમ્યગ્દર્શન વમીને મિથ્યાત્વભાવને પામેલા જીવોને યથાર્થ જ્ઞાન કે ચારિત્ર સંભવતાં નથી. માટે જ તેઓ નિર્વાણ પદ ન જ પામે એમ કહેવું યોગ્ય છે. અને દ્રવ્ય ચારિત્ર (મુનિનો વેષ વગેરે) રહિત જીવો શ્રીભરતર ચક્રવર્તિ આદિની માફક મુક્તિપદ પામે, પરંતુ તત્ત્વહૃત પદાર્થોની ઉપર શ્રદ્ધા વિનાના જીવો અંગાર મદક, વિનયરત્ન, સંગમક દેવ, કપિલા દાસી, વગેરેની માફક નિર્વાણપદ પામી શકતા નથી. જુઓ આ જ નિર્મલ દર્શન ગુણના પ્રતાપે કૃષ્ણ અને શ્રેણિકૃ મહારાજ જેવા જીવો પણ “સમ્યગ્દષ્ટિ શ્રાવક (૧) અને (૨) દેશવિરતિશ્રાવક” એમ એ પ્રકારના શ્રાવકો પૈકી સમ્યગ્દષ્ટિ શ્રાવક તરીકે પ્રસિદ્ધિ પામ્યા હતા. આટલા કથન

૧. આનું સ્વરૂપ શ્રીપંચમ કર્મઅંધથી જાણી શકાય. ૨. આણુ ૮૪ લાખ પૂર્વાનું, કાયા ૫૦૦ ધનુની.

૩. ૧૬-કુમારપણામાં, ૫૬-મંડલિકપણામાં ૯૨૮-વાસુદેવપણામાં. કૃષ્ણનું ૧૦૦૦ વર્ષોનું આયુષ્ય હતું. તે મરીને ત્રીજી નરકે ગયા અને આવતી ચૌવીશીમાં બારમા ‘અમમ’ નામના તીર્થંકર થશે.

૪. આની વિશેષ જ્ઞાનાં વૃત્તિયાંજ શ્રીસ્થાનાંજ સૂત્રના નવમા અધ્યયનથી જાણી શકાય.



ઉપરથી નિર્વિવાદ જરૂર કહી શકાય કે સમ્યગ્દર્શન એ સિદ્ધિપદ પામવાના સાધનોમાં મુખ્ય સાધન છે.

આવા અનેક મુદ્દાઓને ધ્યાનમાં લઈને દશપૂર્વધર, પૂજ્યપાદ<sup>૧</sup> વાચક વર્ષ શ્રી ઉમાસ્વાતિ<sup>૨</sup> મહારાજે શ્રી તત્ત્વાર્થસૂત્રના “સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રાણિ મોક્ષમાર્ગ :” આ પ્રથમ સૂત્રની શરૂઆતમાં સમ્યગ્દર્શનનું પ્રહણ કરેલ છે.

**પ્રશ્ન**—અહીં ત્રણની આરાધનાથી મોક્ષ મળે એમ કહ્યું, તો જિનભદ્રગણિ<sup>૩</sup> ક્ષમા-શ્રમભૂકૃત વિશેષાવશ્યક આદિમાં “નાણકિરિયાહિ મોક્ષો” આ વચન દેખાય છે, તે કઈ અપેક્ષાએ સમજવું ?

**ઉત્તર**—સમજવા જેવી ખીના એ છે કે—અન્વય વ્યતિરેકથી દર્શન અને જ્ઞાન સાથે જ રહે છે. એટલે ભ્યાં (જે જીવને) જ્ઞાન હોય, ત્યાં દર્શન અને ભ્યાં દર્શન હોય ત્યાં જ્ઞાન હોય છે. દર્શન વિનાનું જ્ઞાન તો અજ્ઞાન કહેવાય છે. કારણ કે તેમાં મિથ્યાત્વ ભળ્યું છે. જુઓ પ્રશમરતિનો સાક્ષિપાઠ—“આચત્રિકમજ્ઞાનમપિ ભવતિ મિથ્યાત્વ-સંયુક્તમ્” આ અપેક્ષાએ દર્શનનો જ્ઞાનમાં અંતર્ભાવ કરીને “જ્ઞાનક્રિયામ્યાં મોક્ષઃ” એમ કહેલ છે.

### સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ

(૧) દર્શન તે સમ્યક્ત્વ જાણવું અને તે તત્ત્વાર્થના અદ્વાનરૂપ છે. જુઓ સાક્ષિ પાઠ—“વંસણમિહ સમ્મતં તં પુણ તત્તત્થસદ્દહણરૂઠ્ઠવં” સંબોધ પ્રકરણમાં. (૨) શ્રીવીતરાગ પ્રભુએ કહેલ દ્રવ્ય, ગુણ, પર્યાયરૂપ તત્ત્વોને વિષે નિર્મલ રૂચિ એટલે અદ્વા રાખવી તે સમ્યક્ત્વ કહેવાય. જુઓ સાક્ષિપાઠ—“જિનોક્તત્ત્વેષુ રુચિઃ, શુદ્ધા સમ્યક્ત્વમુચ્યતે” યોગશાસ્ત્રમાં. (૩) તત્ત્વભૂત પદાર્થોનું યથાર્થ અદ્વાન તે સમ્યગ્દર્શન કહેવાય. કહ્યું છે કે “તત્ત્વાર્થશુદ્ધાનં સમ્યગ્દર્શનમ્” તત્ત્વાર્થમાં. એ પ્રમાણે અનેક ગ્રંથોના પાઠોનું સૂક્ષ્મ બુદ્ધિથી અવગ્રહ કરવાના પરિણામે નિર્ભય એ થયો કે—તત્ત્વાર્થ સંબંધિ અદ્વાન તે સમ્યક્ત્વ (રૂપકારણ)નું કાર્ય છે.

૧. આ ઉપરથી ઉમાસ્વાતિજી પૂર્વધર હતા એમ જાણવું. કહ્યું છે કે—

વાઈય ચમાસમણે—દિવાયરે વાયગત્તિણ્ણે ॥ પુવ્વગયંમિય સુત્તે—एए सदा पयट्ठंति ॥१॥

૨. શ્રીઉમાસ્વાતિજી મહારાજ આર્થ મહાગિરિજીના પ્રશિષ્ય અને બલિરસહના શિષ્ય થાય અને પ્રજ્ઞાપનાના વિદ્યાયક શ્રીશ્યામાચાર્યજીના ગુરુ થાય.

“જેન ધર્મનો પ્રાણીન ઇતિહાસ”માં કહ્યું છે કે— વીં સં ૧૦૧ માં તેઓ વિદ્યમાન હતા. તત્ત્વાર્થસૂત્ર, પ્રશમરતિ, ચશોધરચરિત્ર, શ્રાવક પ્રજ્ઞાસિ આદિ ૫૦૦ ગ્રંથોના તેઓ કર્તા હતા. એમ વિવિધ તીર્થકલ્પમાં કહ્યું છે. તેઓ કૌલીષિની ગોત્રના હતા. તેમના પિતાનું નામ સ્વાતિ અને માતાનું નામ ઉમા હતું. જન્મસ્થલ—ચંદ્રોદિકાગ્રામ હતું. પાટલિપુત્ર (કુસુમપુર)માં તેમણે તત્ત્વાર્થસૂત્ર બનાવ્યું. ભાષ્ય પણ બનાવ્યું. તેઓ વિદ્યામંત્રનિધાન હતા. દિગંબરો તેમને સરસ્વતી ગચ્છના કહે છે.

૩. આ યુગપ્રધાન આચાર્ય. વિં સં ૫૮૫ થી ૬૪૫ સુધીમાં હયાત હતા. તેમણે સંક્ષિપ્ત જિતકલ્પ, બૃહત્સૈત્ર સમાસ, ધ્યાનશતક, બૃહત્સંગ્રહણી, વિશેષાવશ્યક ભાષ્ય આદિ ગ્રંથો બનાવ્યા. તેમનો સ્વર્ગવાસ ૧૦૪ વર્ષની ઉંમરે થયો.

**પ્રશ્ન**—આથી તો એમ સાબીત થાય છે કે, શ્રદ્ધા અને સમ્યક્ત્વનો કાર્ય કારણ ભાવ છે. જેથી અને પદાર્થો અપેક્ષાએ જુદા જુદા માનવા જોઈએ. તો શ્રદ્ધાનું અને સમ્યક્ત્વનું અલગ અલગ સ્વરૂપ શું સમજવું?

**ઉત્તર**—અમુક જાતની માનસિક ભાવનાનું નામ શ્રદ્ધા છે. એટલે રાગ, દ્વેષ, અજ્ઞાન એ ત્રણ મુખ્ય કારણથી અસત્ય બોલાય છે. રાગને લઈને માનવજાત મિત્રાદિના દોષ છુપાવવા જૂઠું બોલે છે, અને દ્વેષને લઈને શત્રુમાં અજ્ઞતા દોષનો આરોપ કરી જૂઠું બોલે છે, તેમજ પોતે વસ્તુ સ્વરૂપ ન જાણે તેથી પણ (રાગદ્વેષ ન હોય તો પણ) જૂઠું બોલે છે. આ ત્રણે કારણોનો નિર્મૂલ નાશ કરનાર શ્રી જિનૈશ્વર પ્રભુએ કહેલી જીવાદિ તત્ત્વોની ખીના સાચી જ છે, અને તેમણે કહેલ ત્રિપુટી શુદ્ધ દયા પ્રધાન ધર્મ, આ ભવમાં અને પરભવમાં પરમ કલ્યાણકારી છે, વાસ્તવિક શાશ્વત સુખને દેનાર છે, ખાકીના સ્ત્રી કુટુંબ કપીલા દોલત—જે હું જન્મતા સથે લાગ્યો નથી, મરતી વખતે લઈ જવાનો નથી એ તમામ સ્ત્રી આદિ પદાર્થોની મમતાથી કેવલ દુઃખ જ ભોગવવાનું છે. પરભવમાં પણ સુખનું સાધન પ્રભુદેવે કહેલ એક ધર્મ જ છે. મારા અરિહંત તે દેવ છે. કંચન કામિનીના ત્યાગિ મુનિવરો એ મારા એકાંત હિતકારી ગુરૂ છે. આવી જે મનની દૃઢ ખાતરી એ શ્રદ્ધા કહેવાય.

આથી જૂઠું અમુક જાતના આત્મ પરિણામ એ સમ્યક્ત્વ કહેવાય. એટલે પૂર્વે કહ્યા મુજબ અનંતાનું બંધિ-૪ અને સમ્યક્ત્વ મોહનીય, મિત્ર મોહનીય, મિથ્યાત્વ મોહનીય એમ સાતે પ્રકૃતિઓના ક્ષય, ઉપશમ અથવા ક્ષયોપશમથી પ્રકટ થયેલો અને પ્રશમ (ક્ષમા-ઉપશમ-ક્રોધ નહિ કરવો તે), સંવેગ (મોક્ષની ઇચ્છા), નિર્વેદ (સાંસારિક વિવિધ ઉપાધિથી કંટાળી જવું તે), અનુકંપા (દયા), અને આસ્તિક્યથી જાણી શકાય એવો આત્માનો જે શુભ પરિણામ તેનું નામ સમ્યક્ત્વ કહેવાય. જુઓ એ જ ખીના આવશ્યક નિયુક્તિમાં પણ કહી છે. “સે અ સમ્મતે પસત્થ સમ્મત્ત મોહણીય કમ્માણુવેઅણોવસમ સ્વય(સ્વઓવસમ)સમુત્થે પસમસંવેગાહિલિંગે સુહે આયપરિણામે પળ્લસે”.

આ પ્રમાણે સમ્યક્ત્વનું સ્વરૂપ કહેલું હોવાથી, રહસ્ય એ નીકળે છે કે ન્યાં ન્યાં શ્રદ્ધા હોય ત્યાં ત્યાં સમ્યક્ત્વ જરૂર હોય. દષ્ટાંત એ કે જેણે મનઃપર્યાપ્તિ પૂરી કરી છે એવા કરણપર્યાપ્તિ અને દશે પ્રાણોને ધારણ કરનાર શ્રદ્ધાવાળા તીર્થંકર આદિ મહાપુરૂષોને સમ્યક્ત્વ જરૂર હોય છે. આ ખાખતમાં ન્યાય પણ એમ જ સ્પષ્ટ જાહેર કરે છે કે—રસોડાના દષ્ટાંતે ન્યાં ધૂમાડો હોય ત્યાં અગ્નિ જરૂર હોય જ, પરંતુ જેમ તપાવેલા લોહના ગોળા આદિમાં ધૂમાડા વિના પણ અગ્નિ દેખાય છે, અને રસોડા આદિમાં ધૂમ સહિત અગ્નિ દેખાય છે, તેમ ન્યાં સમ્યક્ત્વ હોય ત્યાં (તે જીવને) શ્રદ્ધા હોય અથવા ન પણ હોય. જુઓ, જેઓ પાછલા ભવનું સમ્યક્ત્વ લઈને માતાના ગર્ભમાં ઉપજે એવા શ્રીતીર્થંકર વગેરે મહાપુરૂષોને મનઃપર્યાપ્તિ પૂરી થયા પહેલાં એકલું સમ્યક્ત્વ હોય છે, અને તે પર્યાપ્તિ પૂરી થયા પછી અને (સમ્યક્ત્વ અને શ્રદ્ધા) હોય છે. આથી સાબીત થયું કે ખરી રીતે સમ્યક્ત્વ અને શ્રદ્ધા એ બંને અલગ છે, છતાં ઔપચારિક ભાવથી સમ્યક્ત્વરૂપ (શ્રદ્ધાના) કારણમાં શ્રદ્ધા (રૂપકાર્ય)નો ઉપચાર કરીએ તો અને એક પણ કહી શકાય, એમ શ્રી ધર્મસંગ્રહ ટીકામાં શ્રી યશોવિજયજી મહારાજનાં વચનોથી જાણી શકાય. તાત્પર્ય

એ કે—શ્રદ્ધાન એ માનસિક અધ્યવસાયરૂપ છે, તેથી એકાંતે શ્રદ્ધા અને સમ્યક્ત્વ એક જ માનવામાં ઉપર જણાવેલા અપર્યાપ્તા જીવોમાં અને સિદ્ધ પરમાત્મા વગેરેમાં પણ સમ્યક્ત્વનું લક્ષણ ઘટશે નહીં. કારણકે તેઓને મન નથી, તો શ્રદ્ધારૂપ સમ્યક્ત્વ પણ હોઈ શકે નહિ, અને પ્રભુશ્રી તીર્થંકર દેવે તો તેમને સમ્યક્ત્વ હોય એમ કહ્યું છે. જેથી આ યુગવચણ દૂર કરવા માટે શ્રીભદ્રબાહુ સ્વામીજીએ<sup>૧</sup> આત્મપરિણામરૂપ સમ્યક્ત્વ છે એમ ફરમાવ્યું. આ લક્ષણ સર્વત્ર વ્યાપક છે એમ સમજવું. વળી એ ધ્યાનમાં રાખવું કે—જીવ, અજીવ, પુણ્ય, પાપ, આશ્રય, સંવર, નિર્જરા, અંધ અને મોક્ષ એમ નવ તત્ત્વોને જાણનારા જીવને સમ્યક્ત્વ હોય છે. **જીવાહનવપયપયતથે જો જાણહ તસ્સ હૌહ સમ્મત્તં** (જે બાવ્ય જીવ, જીવ વગેરે નવ તત્ત્વોને જાણે તેને સમ્યક્ત્વ હોય છે.)

આ પ્રસંગે એ પ્રશ્ન ઉપસ્થિત થાય છે કે—જે તત્ત્વજ્ઞાનથી સમ્યક્ત્વ પ્રકટે છે, તો પદ્મી “**ભાવેણ સદ્દહંતો અયાણમાણે વિ સમ્મત્તં**” એટલે જે જીવ તત્ત્વજ્ઞાની ન હોય, પણ ભાવથી પ્રભુદેવે કહેલ પદાર્થ સ્વરૂપની યથાર્થ શ્રદ્ધા રાખે, તે જીવ સમ્યક્દષ્ટિ કહેવાય, આ વાત કેવી રીતે સંભવે? આનો ઉત્તર એ છે કે ‘**અયાણમાણે વિ સમ્મત્તં**’ આ પદ — જ્ઞાનના અભાવને કહેતું નથી, પરંતુ વિસ્તારપૂર્વક મેળવેલા તત્ત્વજ્ઞાનની અપેક્ષાએ અજ્ઞાન એટલે અવજ્ઞાનરૂપ અર્થને કહે છે. એટલે જે જીવે જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મોના ઉદયથી<sup>૨</sup> વિસ્તારથી તત્ત્વોને ન જાણ્યાં હોય, તોપણ જે તે પ્રભુએ કહેલાં તત્ત્વોની યથાર્થ શ્રદ્ધા રાખે, તો તે જીવ સમ્યક્દષ્ટિ કહેવાય. જીઓ આ બાબતમાં દષ્ટાંત પણ એ છે કે—જેમ ઘણી લક્ષ્મીવાલા માણસની અપેક્ષાએ ઓછી ઋદ્ધિવાલો માણસ નિર્ધન કહેવાય, તથા તુચ્છ જીર્ણ વસ્ત્રવાલો માણસ પણ વિશિષ્ટ (ઉત્તમ) વસ્ત્રોના અભાવે (તેવાં લુગડાં ન હોય ત્યારે) વસ્ત્ર રહિત કહેવાય, તેવી રીતે કદાચ કર્મોદયની પ્રબલતાથી તત્ત્વોનું વિસ્તારથી જ્ઞાન ન હોય, તોપણ શ્રીજિનેશ્વરદેવે સકલ જીવોપકારિણિ, દેશના દ્વારા કહેલા પદાર્થોની બીના સાચી અને નિઃશંક છે, અને નિર્ઐથ પ્રવચન તે જ સત્ય અને પરમાર્થ છે, શેષ તમામ સાંસારિક પદાર્થો તે દુઃખદાયક છે ઇત્યાદિ શુભ ભાવના જન્ય (ઉપજવ્યાં લાયક) શ્રદ્ધાનવાલા જીવને સમ્યક્દષ્ટિ ખૂશીથી કહી શકાય. અને જે તેમ ન માનીએ તો શ્રદ્ધાના અભાવે જ્ઞાન, અને જ્ઞાનના અભાવે ચારિત્ર પણ ન સંભવે અને પરંપરાએ મોક્ષપદ પણ કેવી રીતે મેળવી શકાય? માટે ઉપર જણાવેલા શ્રદ્ધાવંત જીવને સમ્યક્ત્વ જરૂર હોય. એમ અંગીકાર કરવાથી જ જેમને વિસ્તારથી તત્ત્વોનું જ્ઞાન ન હતું એવા તે શ્રીમાપતૃષ આદિ મુનીશ્વરોની પ્રવચનમાં કહેલી મુક્તિ ઘટે છે.

અપૂર્ણ

૧ શ્રીભદ્રબાહુસ્વામી યશોભદ્રસૂરિના પ્રથમ પટ્ટધર અને સ્થૂલિભદ્ર સ્વામિના કાકાગુરૂ થાય. દશપૂર્વ પાઠક, આવશ્યકાદિ (દશ) સૂત્રોની ઉપર નિયુક્તિ બનાવનાર, ક્વચિત્ત્વરૂપોત્ત, સામુદ્રિકશાસ્ત્ર, ભદ્રબાહુસંહિતા, તીર્થયાત્રા પ્રબંધ, આદિ ગ્રંથોના કર્તા એવા શ્રીભદ્રબાહુસ્વામી ૧૪ પૂર્વ ધર અને ૭ શ્રુત કેવલિમાંના એક હતા. તેમણે ૪૫ વર્ષ વીત્યાબાદ સયમ લીધું. ૧૭ વર્ષના દીક્ષા પર્યાયે યુગપ્રધાન થયા. ૧૪ વર્ષ સુધી યુગપ્રધાન પદવીમાં રહ્યા. સર્વાયુ ૭૬ વર્ષ વીત્યાબાદ સ્વર્ગે પધાર્યા. વિશેષ બીના પરિશિષ્ટ પર્વમાંથી મલી શકશે.

# ગુજરાતની જૈનાશ્રિત કળા\*

લેખક-ત્રીચુત સારાભાઈ મણિલાલ નવાઝ  
(ગતાંકથી ચાલુ)

ગુજરાતની આ જૈનાશ્રિત કળાનો સંપ્રદાય ભારતીય ચિત્રકળાના ઇતિહાસ માટે બહુ જ મહત્વનો છે. તેનું એક કારણ તો એ છે કે આ ચિત્રકળાના નાના અગર મોટા દરેક ચિત્રે કેટલાયે સૈકાઓ સુધી અજાંતા, બાધ અને એલોરાની ગુફાઓનાં ભિત્તિચિત્રોની પરંપરા જળવળી રાખી છે. બીજી બાજુ એ કે સ્વચ્છતા અને સુંદરતામાં ઘણી જ આગળ પડતી અને પ્રખ્યાતિમાં આવેલી રાજપુત અને મુગલ કળાની તે જન્મદાની છે; ત્રીજી બાજુ કેટલાક દાખલાઓમાં તેની સાથે ઇરાની કળાનું મિશ્રણ થયેલું છે.

ગુજરાતની જૈનાશ્રિત કળાનાં નાનાં છબિચિત્રોની આટલી બધી ઉપયોગિતા હોવા છતાં તેના તરફ બહુ જ ઓછું ધ્યાન આપવામાં આવ્યું છે, તેમજ તેના ઉપરનાં બહુ જ થોડાં લખાણો પ્રસિદ્ધિમાં આવેલાં હોવાથી હજુસુધી કેટલાક વિદ્વાનોને આ કળા તદ્દન અજ્ઞાત છે. અને જૈન કોમ તે તરફ ઉદ્દાસી છે. આ કળા અગ્નણુ રહેવાનું એક કારણ એ પણ છે કે જૈન ગ્રંથલંકારો સિવાય ભારતનાં મ્યુઝિયમોમાં તેમજ પાશ્ચાત્ય પ્રદેશોમાં તેની જે હસ્તલિખિત પ્રતો જોવામાં આવે છે તે, મળી આવતી પ્રતોમાંના સોમા ભાગની પણ નથી. ભારતના જૈન ગ્રંથલંકારો, જૈન સાધુઓ તથા જૈન ધનાઢ્યોના ખાનગી સંગ્રહોમાં બધી મળીને હજારો હસ્તપ્રતો હજુ અણુશોધી પડી છે. બીજું કારણ વસ્તુના અજ્ઞાતપણાને લીધે તેના વહીવટદારોની તે નહિ બતાવવાની સંકુચિતતા છે. કેટલાક દાખલાઓમાં આ સંકુચિતતા બ્યાજખી પણ છે.

પરદેશમાં ગુજરાતની આ જૈનાશ્રિત કળાના નમૂનાઓ મુખ્યત્વે કરીને નીચેનાં સ્થળોએ આવેલાં છે:

ઇંગ્લાંડના ષિટીશ મ્યુઝિયમમાં, ઇડિયા ઓફિસની લાયબ્રેરીમાં, રોયલ એશિયાટિક સોસાયટીની લાયબ્રેરીમાં, બ્રેડલીઅન લાયબ્રેરીમાં, કેમ્બ્રિજ યુનિવર્સિટીની લાયબ્રેરીમાં, જર્મનીમાં Sterats Biblisthek અને મ્યુઝિયમ four Volkernkunde અને બર્લિનમાં, ઓસ્ટ્રિયામાં વીએનાની યુનિવર્સિટીની લાયબ્રેરીમાં અને ફ્રાન્સમાં Strasbourg ની લાયબ્રેરીમાં, કદાચ થોડી ઘણી ઇટાલીના ફ્લોરેન્સની લાયબ્રેરીમાં પણ હોય. અમેરિકાના યુનાઇટેડ સ્ટેટ્સમાં ખાસ કરીને બોસ્ટન મ્યુઝિયમમાં કે ન્યાં ભારતીય જૈન ગ્રંથલંકારો બાદ કરીએ તો પરદેશમાં આ કળાનો સારામાં સારો સંગ્રહ છે. વોશિંગ્ટનમાં ફ્રીઅર ગેલેરી ઓફ આર્ટમાં. ન્યૂયોર્કમાં મેટ્રોપોલિટન મ્યુઝિયમ અને ડેટ્રોઇટના આર્ટ મ્યુઝિયમમાં તથા ઘણા અમેરિકન ધનકુબેરોના ખાનગી સંગ્રહોમાં આવેલાં છે. આ પ્રમાણે પશ્ચિમના પ્રદેશોમાં બહુ જ થોડી જગ્યાઓએ પ્રતો ગએલી હોવાથી પણ ઘણા પાશ્ચાત્ય વિદ્વાનો આ ગુજરાતની જૈનાશ્રિત ચિત્રકળાથી અજાણ્યા હોવાનું સંભવી

\* બારમી ગુજરાતી: સાહિત્ય પરિષદ તરફથી સ્વીકારાયેલા નિબંધ

શકે છે. પરંતુ હવે એવો સમય આવી લાગ્યો છે કે ભારતીય ચિત્રકળાના અભ્યાસીઓને આ કળાથી અજાત રહેવાનું પાલવી શકે જ નહિ.

**કળાની દૃષ્ટિએ આ કળાનું વિવેચન** — કળા નિર્માણની દૃષ્ટિથી ગુજરાતની જૈનાશ્રિત કળા એ નાનાં છબિ-ચિત્રોની કળા છે અને તે બહુ જ મજબૂતો વિષય છે. નાનાં ઔદ્ધ છબિચિત્રોના આલેખનનું અનુકરણ તેમાં નથી. ભારતીય ચિત્રકળાના ઇતિહાસમાં સુંદર કળા નિર્માણ અર્થે અગાઉના એક પણુ દૃષ્ટાંત વિના મૂળ ખનાવટ નહિ, પણ તેના ઉપયોગ સારૂ ગુજરાતની જૈનાશ્રિત કળાને માન ઘટે છે. પ્રાચીન ગુજરાતની આ કળા એ ગંભીર કળા છે; તેમજ શારીરિક અવયવોનું યથાર્થ દિગ્દર્શન કરાવનારી આ કળા ઘણી જ સુંદર ચિત્રકળાની રચના સારૂ પંકાએલી છે, એટલું જ નહિ પણ કળાની નિપુણતા ઉપરાંત તેની અંદર અત્યંત હાર્દિક ખુબી રહેલી છે. થોડાંએક ચિત્રો જો કે કઠોર અને ભાવશૂન્ય હોય તેમ લાગે છે, તે પણ કેટલીક વખત મુખમુદ્રાલેખન અને લાવણ્યમાં તે ચડી જાય છે. ચિત્રના રંગોની પસંદગી તે ઘણા ઊંચા પ્રકારની છે. તાડપત્ર ઉપરની કળા બહુ જ ઊંચી કક્ષાની છે, જો કે તેના વિષયો બહુ મર્યાદિત છે. પાછળથી તેરમા સૈકાની એક પ્રતમાં તે કુદરતી દૃશ્યો પણ ચીતરેલાં મળી આવ્યાં છે. ચૌદમા સૈકાના અંત ભાગમાં આ કળાના સૌથી ઉત્તમમાં ઉત્તમ નમૂનાઓ મળી આવ્યાં છે. કાગળ ઉપરની કળા પણ કેટલાક દાખલાઓમાં બહુ જ ઊંચી કક્ષાની છે. જનજરમાન સુવર્ણમય અથવા રક્તવર્ણ પૃષ્ઠભૂમિ ઉપર આલેખેલા આસમાની, શ્વેત તેમજ વિવિધ રંગો બહુ જ આનંદ આપે છે. ખરેખર ગુજરાતની જૈનાશ્રિત કળાનું જો કોઈ ખાસ મહત્ત્વનું લક્ષણ હોય તે તે ખાસ શૈભાયમાન ચિત્રોથી હસ્તપ્રતો શણગારવાનું હતું. ચળકતા સુવર્ણરંગી અને વિધવિધ રાતા રંગના સુંદર રંગથી રંગવાની કળા કળાકારની ખુબીમાં ગૌણ ન હતી, પણ તે તે તેના મુખ્ય પાયો હતો. વળી અલંકાર અને શારીરિક અવયવોની દરેક ઝીણવટમાં માપ અને ચોક્કસ આકારનું જ્ઞાન ચિત્રકારની અલંકરણ કરવાની તીવ્ર લાલસાથી અંકાએલું છે.

યદ્યપિ ચિત્રકારે તેજ અને જાયાનેા ઉપયોગ ચિત્રને ઉઠાવવામાં—બહાર પડતાં દેખાવામાં—કર્યો નથી, તેપણુ એમ માની લેવું નહિ કે કળાકારે ત્રણ જગ્યામાં—લંબાઈ ઊંચાઈ અને પહોળાઈમાં—અવગાહતી મૂર્તિઓ (plastic form)ને દોરવાને જરૂર પ્રયત્ન કર્યો નથી. આ દેખાવ ભરાપદાર અંગો દોરતે, વખતે દાઢી આદિ વળાંકને પ્રમાણ કરતાં વધારીને તેઓ કરતા; અને ચિત્ર આપણે આબુએથી જોતા હોઈએ તેવું ખતાવતી વેળા તે કળાકાર અને આંખોને એવી રીતે દોરતો કે આપણને છબી તફત સપાટ જ લાગે.

**ચિત્ર ચીતરવાની રીત** — ગુજરાતની જૈનાશ્રિત કળાના ત્રણે વિભાગ દરમ્યાનનાં ચિત્રો સામાન્ય રીતે મળતાં દેખાય છે; જો કે પ્રતો તૈયાર કરવાના પ્રકાર જુદી જુદી રીતના દેખાય છે. મુખ્યત્વે લખનાર અને ચીતરનાર વ્યક્તિઓ અલગ અલગ હોય તેમ લાગે છે. તેપણુ કેટલાક દાખલાઓમાં લખનાર અને ચીતરનાર એક પણુ હોય છે. આજે પણ વયોવૃદ્ધ આચાર્ય મહારાજ શ્રીજયસૂરીશ્વરજી પોતાની જાતે જ પ્રતો લખે છે અને તેમાં ચિત્રો ચીતરે છે. અક્ષરો લખનાર ચિત્ર ચીતરનાર માટે અમુક જગ્યા છોડી દેતો. આ વાત પ્રતોની આરીક તપાસ કરવાથી જણાઈ આવે છે. પ્રતના અક્ષરો

ચિત્રોની જગ્યા છોડીને ધારાબદ્ધ ચાલ્યા આવતા દેખાય છે. કેટલાક દાખલાઓમાં ચિત્રકારની સમજ ખાતર હાંસીઆમાં પ્રસંગને લગતું લખાણ પણ લખેલું મળી આવે છે, કે જેને ચિત્રકાર મુખ્યત્વે અનુસરતો. બહુધા લખનાર પોતાનું કામ પૂરું કરતો ત્યારે તે પ્રત ચિત્રકારને સુપ્રત કરતો હોય એમ સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે. નાનાં ચિત્રોના આલેખનમાં પત્ર ઉપર ખાસ રાખેલી જગ્યામાં તાડપત્ર ઉપર લાલ રંગ અને કાગળ ઉપર પ્રવાહી સુવર્ણની સાહી અથવા સુવર્ણનાં ઝીણામાં ઝીણા પાનાં, જેટલી જગ્યામાં ચિત્ર દોરવાનું હોય તેટલી જગ્યામાં, પ્રથમ લગાડવામાં આવતાં. તેની પાછળની-પૃષ્ઠ-ભૂમિ મોટે ભાગે ઘેરા રાતા રંગમાં કરવામાં આવતી અને સોના ઉપર રંગની ભૂકી એવી રીતે લગાડવામાં આવતી કે ચિત્ર પોતે સુવર્ણમય જ લાગે. બાહ્ય રેખાઓ અને આંખો, આંખનાં પોપચાં, કાન, આંગળીઓ વગેરે પછીથી કાળા રંગમાં રંગવામાં આવતાં હતાં. જૈન છબિચિત્રો આ રીતે દોરવાનું પરિણામ એ આવ્યું કે સ્ત્રી અને પુરુષોની મુખાકૃતિઓ, તેમનાં વસ્ત્રો અને પુષ્પાદિથી રચેલા બીજા અલંકારો બનણે સોનાથી સપાટ ચીતરેલાં હોય એમ જણાય છે. ચિત્રને જ્યારે આપણે બાણુ ઉપરથી તપાસતા હોઈએ ત્યારે જણાય છે કે આવી છબિના ચહેરામાં નાકને કેટલીક વખત લાલ રંગથી રંગવામાં આવતું હતું.

આ રીતે ચિત્ર તો સંપૂર્ણ દોરતું; પણ હવે તેમાં રંગ પૂરવાને પીછી ઉપર આસમાની રંગ લેવાતો અને વસ્ત્ર તથા બીજા ભાગો ઉપર તે જરૂર પૂરતો મૂકવામાં આવતો; તેમજ મનુષ્ય અને પ્રાણીઓના શરીરના ગોળ ભરાવદાર ભાગો જેવી કેટલીક જગ્યાઓએ બહી પીછીથી રંગ પૂરીને તે પ્રમાણમાં ઘટ્ટ-સ્થૂલ દેખાય તેમ કરાતું. શ્વેત ખાલી જગ્યાઓ કોઈક વાર ધરાદાપૂર્વક રાખવામાં આવતી, પણ ક્યારેક સુવર્ણનાં પાનાં ચોટાડતા અક્સ્માતથી પણ રહી જતી. તેમજ સાધુઓનાં સફેદ કપડાં બતાવવા માટે મોતીના રંગ જેવો ધોળો રંગ ક્યારેક સાધુઓનાં કપડાં ચીતરવામાં વપરાતો.

બહુ જ ઓછા પ્રસંગે એક પાંચમો રંગ વપરાશમાં લેવાતો. એ રંગ તે બહુ જ સુંદર મોરથુથા જેવો લીલો રંગ. પ્રાચીન હસ્તપ્રતો ચીતરનારાઓના રંગસંભારમાં આ સિવાય બીજા કોઈ પણ રંગો મળી આવતા નથી. પણ પછીના વખતની કાગળના સમયની હસ્તપ્રતોમાં કેટલીકવાર સુવર્ણરંગની જગ્યા પીળા રંગે અને રાતા રંગની પૃષ્ઠ-ભૂમિની જગ્યા આસમાની રંગે લીધેલી લાગે છે.

જૈનાશ્રિત કળાનાં નાનાં છબિચિત્રો દોરવામાં શરીરના પ્રત્યેક અંગ પ્રલંગ દોરવાની રચના વાસ્તવિક તુલના ઉપર આંધવામાં આવતી હતી. શિલ્પકળાનાં ઝૂંગાર આમાં મુખ્ય ભાગ ભજવે છે.

ચિત્ર અને લિપિ અને પવિત્ર આનંદજનક નેત્રવિહાર બની રહે તે માટે પ્રયત્નો કરવામાં આ ત્રંથો શોભા-સમૃદ્ધિની ટોચ રજૂ કરે છે. ઘૂંટેલી કાળા, ભૂરી કે લાલ ભોંય ઉપર અક્ષરો અને ચિત્રોની તકતીઓ યોગ્ય રીતે સાચવીને હાંસીઆમાં જે વેલપટ્ટીઓ અને આકૃતિઓની વાડીઓ ભરી દીધી છે તેની તોલે આવે એવી પ્રાચીન પ્રતો જાણવામાં નથી. કાતરકામવાળી ઉપસેલી વેલો અને છોડવાઓ કાંતો એક જ શૈલીના બનાવાતા અગર કુદરત ઉપરથી પણ બનાવવામાં આવતા. પશુઓ અને પક્ષીઓનાં ચિત્રો, ખાસ બુરંગથી રંગેલા રાજહંસો, સફેદ રંગના હાથીઓ, ઘોડાઓ, હરણો, વિવિધ જાતનાં

નૃલ ચિત્રો વગેરે, ડિનારીની ઉપર તથા આબુઆબુના હાંસીઆમાં શેલા આપનારા પદાર્થો તરીકે યોજવામાં આવતા. તેમજ જૈનધર્મની પવિત્ર આઠ નિશાનીઓ-અષ્ટ મંગળ તથા ચૌદ સ્ત્રાહિનો પણ તેવી જ ગતનો ઉપયોગ કરવામાં આવતો.

આ કળાનાં આ નાનાં છબિચિત્રોનું અસ્તિત્વ ન હોત તો આપણને તે જૂના કાળનો પરિચય નહિવત્ અથવા બહુ જ અદ્ય હોત. આ ચિત્રો તે સમયના જીવનનું અને સંસ્કારનું જે જ્ઞાન આપણને પૂરું પાડે છે તે બહુ જ કિંમતી છે. ખરેખર આપણે તે ઉપરથી જન્મથી માંડી મરણ પર્યંતના-સમસ્ત જીવનના દરેક ભાગનું વિશ્વનય અને બહુવિધ દ્રશ્ય પ્રાપ્ત કરી શકીએ છીએ.

**આ કળાની ખાસ વિશિષ્ટતાઓ** — આ કળાનાં ચિત્રોની ખાસ વિશિષ્ટતાઓ તો તેનાં સ્ત્રી અને પુરુષ બંનેના ચહેરાની રીતો બહુ જ જુદા પ્રકારની છે તે છે, અને વળી તે સાથે તેની આંખો બહુ જ અગ્ગયળી ભરી હોય છે. પ્રાચીન તાડપત્રના સમય દરમ્યાન ચહેરાઓ હમેશાં બેમાંથી એક તરફ, બે તૃતીયાંશ અગર કાંઈક વધારે પડતા ચીતરેલા હોય છે. પછીના-કાગળના-સમય દરમ્યાન આગળની આંખ હમેશાં સંપૂર્ણ દોરવામાં આવતી કે જે પોટ્રેટની ખાલી જગ્યા રોકતી. કેટલાક વિદ્વાનો સમજાવે છે કે આ ફેરફાર ચિત્રકારની ઇચ્છા મુજબ થતો, કારણ કે તે એમ બતાવવા માગતો કે પોતે આ કાંઈ સાદું ચિત્ર ચીતરતો નથી, પરંતુ તેનો ઇરાદો એક સાંપ્રદાયિક ચિત્ર તૈયાર કરવાનો છે. આ દલીલ ગમે તેમ હોય તેના કરતાં મેં મારા 'જૈન ચિત્રકલ્પદ્રુમ' નામના ગ્રન્થમાં રજુ કરેલી દલીલ વધારે યોગ્ય હોય તેમ મને લાગે છે.<sup>૧</sup>

વળી આ ચિત્રો મધ્યેની પુરુષ તથા સ્ત્રીની આકૃતિઓના કપાળમાં ગોળ ટપકા જેવા આકારનું, પુરુષોના કપાળમાં ઉભા ચીપીઆના આકારનું અને કેટલાક દાખલાઓમાં ત્રણ આડી લીટીઓ સહિતનું તિલક જેવામાં આવે છે. સ્ત્રીના કપાળમાં ગોળ ટપકા જેવા આકારનું જે તિલક જેવામાં આવે છે તે પ્રથા ગુજરાતી પ્રજામાં આજે પણ જેમની તેમ ચાલુ છે; પરંતુ પુરુષોના કપાળમાં ઉભા ચીપીઆના આકારનું જે તિલક જૂના ચિત્રોમાં જેવામાં આવે છે તે પ્રથા તે સમયના રીતિરિવાજોનું સમર્થન ભણે કરતી હોય, પરંતુ આજે તે જૈન સમાજમાંથી નાબૂદ થએલી હોવા છતાં પણ તેનું અનુકરણ વૈષ્ણવ સંપ્રદાયમાં જેમનું તેમ કાયમ રહ્યું છે. પ્રાચીન જૈન વિષયો સંબંધીનાં ચિત્રોમાં તેમજ અમદાવાદમાં નાગજી ભુદરની પોળના દેરાસરના ભૂમિગૃહમાં આવેલી વિ. સં. ૧૧૦૨ (ઈ. સ. ૧૦૪૫) ની ધાતુની જિનમૂર્તિના તથા પંદરમા સૈકાના ધાતુના બે પંચતીર્થના પટોમાં જિનમૂર્તિના કપાળમાં પણ ઉભા ચીપીઆના આકારનું તિલક મળી આવતું હોવાથી આપણે સહેજે અનુમાન કરી શકીએ છીએ કે પંદરમી સોળમી સદી સુધી તો ગુજરાતનાં પુરુષપાત્રો, પછી તે જૈન હો કે વૈષ્ણવ, પોતાના કપાળમાં ઉભા ચીપીઆના આકારનું તિલક કરતા હોવા જોઈએ. તે પ્રથા ક્યારે નાબૂદ થઈ તેનું ખરેખર મૂળ શોધી કાઢવું મુશ્કેલ છે, પરંતુ એટલું તો ચોક્કસ છે કે મિ. નાનાલાલ મહેતા કહે છે તેમ પ્રાચીન ચિત્રોમાં મળી આવતાં ઉભા ચીપીઆના આકારનાં તિલકો કોઈ પણ સંપ્રદાયનાં દ્યોતક નહોતાં.<sup>૨</sup>

(અનુસંધાન પૃષ્ઠ ૫૬૬ પર)

૧ જુઓ 'શ્રી જૈન ચિત્રકલ્પદ્રુમ', પૃ. ૩૬. ૨ જુઓ, 'Studies in Indian Painting' pp. 20

श्री जिनप्रभसूरि-विरचितं  
चैत्यवन्दनम्

संग्राहक

पंडित अमृतलाल मोहनलाल संघवी

( द्रुतविलंबित वृत्तं )

ऋषभ ! नम्रसुराऽसुरशेखरं, प्रपतयालुपरागपिशंगितम् ।  
क्रमसरोजमहं तव मौलिना, जिन ! वहे नवहेमतनुद्युते ! ॥ १ ॥  
अपरवस्तुविलोकनलालसा-विषनिषेधबुधां सुषमासुधाम् ।  
वपुषि ते पिबतां मम चक्षुषी, अजित ! भाजितभास्वरकांचनाम् ॥ २ ॥  
हरिहरादिसुरौघविलक्षणा-ऽद्भुतचरित्रचमत्कृतविष्टपम् ।  
सुजन ! भोः पदपीठविलोलुठ-त्सुमनसंभैव-संभव ! दैवतम् ॥ ३ ॥  
मदनदुर्दमदंतिदमे हरि-स्तरुमृगौंकितमूर्त्तिरुपाश्रितान् ।  
हूंतमहारजतद्युतिरग्रणी, शमवतामवँतादभिनन्दनः ॥ ४ ॥  
चरणलक्ष्मिकरग्रहणोत्सवे, विरचितैरयनद्वितयावधि ।  
धृतसुखातिशया वसुवर्षणै-र्वसुमती सुमतीश ! कृता त्वया ॥ ५ ॥  
स्मितजपाकुसुमोपमदीधितिं, कुमतकोककुलामृतदीधिं तिम्र ।  
शरणमीशमुपैमि जगत्त्रयी-मुदरविंदरविं धरनंदनम् ॥ ६ ॥  
सकललोकचमत्कृतिकारिणिं, जिन ! सुपार्श्व ! भवद्गुणधोरिणीम् ।  
क इव नो मतिमान् भुवनत्रये, कुमुदभामुदभावयदुच्चैः ॥ ७ ॥  
शुचिमदंगरुचा नु पराजितः, शशधरोऽकमिषाद्यमशिश्रयत् ।  
सपदि लोचनयोर्मम कल्पतां, स महसे महसेनसुतो जिनः ॥ ८ ॥  
सुविधितीर्थकरं करुणाकरं, करणंविष्करपाशमुपास्महे ।  
करणैकांतिविनिर्जितकार्तिकी-हिमकरं मकरं दधतं ध्वजम् ॥ ९ ॥  
जयति शीतल ! देव ! सरस्वती, त्रिजगतीं पुनैती कविसेविता ।  
मधुरिमाऽतिशयेन नृणीकृता-ऽमृतरसा तरसास्तृषा तव ॥ १० ॥  
जिनवरोऽवतु गण्डैकलांछनः, प्रथमविश्वनतांस्त्रिसरोरुहः ।  
प्रथितविश्वनृपान्वयपुष्करां-वैरमणी रमणीर्यगुणाम्बुधिः ॥ ११ ॥

१. स्मरः । २. तरुमृग=वानर । ३. गालितसुवर्णकान्तिः । ४. रक्षतात् । ५. विकसितजासूद ।  
६. कान्ति । ७. समूह । ८. चन्द्रमा । ९. धरराजसुतं=पद्मप्रभुं । १०. इन्द्रियपक्षिणः । ११.  
करणं=शरीरं । १२. पूगश्च पवने इत्यस्य धातोः शत्रन्ततात् डी । १३. वेगेन । १४.  
गण्डकः गेंडो इति भाषायाम् । १५. अम्बरमणिः=सूर्यः । १६. मनोहरगुणानां समुद्रः ।



मुनिपतिर्वसुपूज्यनृपात्मभूः, जयति निर्जितदुर्जयचित्रभूः ।  
 सुजनकोककदम्बकलोचनो—त्सवरविर्वरविद्रुमविग्रहः ॥ १२ ॥  
 सुकृतिनः ! कृतवर्मधराधवा—न्वयनभस्तलभासनभास्करम् ।  
 श्रयत कांचनवारिरुहच्छद—च्छविमलं विमलं जगदीश्वरम् ॥ १३ ॥  
 उपनमन्ति तमीश ! समुत्सुकाः, प्रणयतो वरितुं सकलाः श्रियः ।  
 जगति तुभ्यमनंत ! नमस्क्रिया—मकलये कलयेद्विनयेन यः ॥ १४ ॥  
 अवतु धर्मजिनेन्द्र ! कुभावना—रजनिनाशनसप्तहयोदयः ।  
 शममयः समयस्तव सुव्रता—तनय ! मां नयमांसलविस्तरः ॥ १५ ॥  
 हृदयनायक ! चक्रिजिनश्रियो—द्विविधवैरिजयोर्जितविक्रमः ।  
 भवभयानि भिनत्तु भवन्मता—नुगविशां गवि शांतिविभो !  
 भवान् ॥ १६ ॥

किमिति तीव्रतपोव्रतशीलनैः, किमिति योगरहस्यनिषेवणैः ।  
 दलयितुं कुगतिं यदि वो रुचि—वृजिनकुं जिनकुंथुमुपास्यताम् ॥ १७ ॥  
 प्रणतवासवमौलिमणिप्रभा—पटलसंवलितांहिनखत्विषम् ।  
 स्मरत भव्यजनाः स्मरकुंजरां—कुशमरं शमरंजितसज्जनम् ॥ १८ ॥  
 अभिनुमः प्रभुमल्लिमुपाकृत—स्मरशरप्रसरांशिश्रुतावधेः ।  
 मकरतद्युतिदर्पविलोपन—क्षमविभामविभाव्यगुणश्रियम् ॥ १९ ॥  
 कमठलक्ष्मणिलक्ष्मनिकेतने, परहितव्रतशालिनि सुव्रते ।  
 अविरतं मम भक्तिरसस्फर त्वनवमेन प्रेघतनुद्युते ॥ २० ॥  
 अलमृभुक्षपदेन सृतं धनैः, युवतिभिः कृतमस्तु नृपश्रिया ।  
 न रुचये मम मुक्तिपदं तव, स्तवनमेव नमे ! भवतु प्रियम् ॥ २१ ॥  
 दनुजजेद्भुजवीर्यमदक्षर-प्रशमनैकभिषग्वरदोर्बलम् ।  
 नमत नेमिजिनं भुवनत्रयी—सुरतरुं रतरुद्रतरुद्विपम् ॥ २२ ॥  
 शिवसुखस्य कथामपि वेदिता, न खलु सा जनता जिन ! कर्हिचित् ।  
 सृजति या प्रभुपार्श्व कुवासना, शतवशा तव शासनलंघनम् ॥ २३ ॥  
 चलनकोटिविघट्टनचंचली—कृतसुराचल ! वीर ! जगद्गुरो ! ।  
 त्रिभुवनाशिवनाशविधौ जिन ! प्रभवते भवते भगवन्नमः ॥ २४ ॥  
 स्वरवतारजतिव्रतकेवला—क्षरपदाप्तिदिनानि पुनः पुनः ।  
 भगवतां विदधतु जगत्रयीं, मुदमितां दमितांतरविद्विषाम् ॥ २५ ॥

इति जिनप्रभसूरिभिरीडिताः, प्रणतचुंचजनाय जिनाधिपाः ।  
ददतु शीलितसिद्धिवधूमुखांऽबुजरसा जरसा रहितं पदम् ॥२६॥  
इति स्तवः ॥

जिनवराः कुनयालिमृणालिनी-मुकुलनैकतुषारमरीचयः ।  
विदधति प्रणतं जनमाहत-स्मरचयं रचयंतु मनांसि नः ॥२७॥  
भगवताऽभिहितार्थमधीयतां, कुपथमाधि कदर्थितमन्मथम् ।  
श्रुतमुदात्तमुदात्तपरस्सर-स्वरचितं रचितं गणधारिभिः ॥२८॥  
प्रथमकल्पपतिः प्रथितायति-प्रवचनांबुजसौरभषट्पदः ।  
कुलिशशोभितपाणिरूपलवं, शमयतामयतामिह नम्रताम् ॥२९॥

इति स्तुतिरपि ॥ छ ॥ सं. १८२१ फागुण वदि २ दिने श्री पाटणनगरे  
लिखितं । लेखक-पाठक चिरं जीयात् ॥ श्री ॥

આમાં કોઈ સ્થાને અર્થ સ્પષ્ટ નથી લાગતો, કોઈક સ્થાને અશુદ્ધિ લાગે છે, ત્રીસમા અને પચીસમા શ્લોકમાં છ'દોશંગ છે; છતાં સુધારો કરવા જતાં ક'ઈક નવી ભૂલ થાય એ બીકે મૂળ પ્રમાણે અક્ષરશઃ આપ્યું છે.

( પૃષ્ઠ ૫૬૩ થી ચાલુ )

તીર્થ'કરોનાં ચિત્રોમાં અંને પ્રકારનાં તિલકો મળી આવે છે. સાધુ અગર સાધ્વીના કપાળમાં કોઈ પણ જાતનું તિલક જોવામાં આવતું નથી. સાધુઓ અને સાધ્વીઓનાં કપડાં પહેરવાની રીત તદ્દન જુદી જ દેખાઈ આવે છે, કારણ કે સાધુઓનો એક ખભો અને માથાનો ભાગ તદ્દન ખુલ્લો-વસ્ત્ર વગરનો હોય છે; જ્યારે સાધ્વીઓનો પણ માથાનો ભાગ ખુલ્લો હોવા છતાં તેઓનું ગરદનની પાછળ અને આખું શરીર કાયમ કપડાંથી આચ્છાદિત થયેલું હોય છે. પ્રાચીન ચિત્રોમાં રાજમાન્ય વિદ્વાન સાધુઓ સુવર્ણ સિંહાસન ઉપર બેઠેલા દેખાય છે, તે એ સમયની પ્રથાની રજુઆત ચિત્રકારે ચિત્રમાં કરી અતાવ્યાની સાબિતી છે.<sup>૧</sup>

મોગલ સમય પહેલાનાં એક પણ જૂના ચિત્રમાં અગર પત્થર ઉપરની આકૃતિઓમાં સ્ત્રીઓના માથા ઉપર ઓઢણું અગર સાડી ઓઢેલી જણાતી નથી. સ્ત્રીઓ ચોળી પહેરે છે, પણ તેઓના માથાનો ભાગ તદ્દન ખુલ્લો હોય છે. આ ઉપરથી ગુજરાતમાં સ્ત્રીઓએ માથે ઓઢવાનો ચાલ મોગલરાજ્ય પછીથી શરૂ થયેલો હોય એમ લાગે છે. મોગલ સમય પહેલાનાં દરેક ચિત્રમાં સ્ત્રીઓથી માફક પુરુષોને પણ લાંબા વાળ હોય છે અને તેઓએ અંબોડા પણ વાળેલા જૂનાં ચિત્રોમાં દેખાઈ આવે છે. વળી પુરુષો દાઢી રાખતા અને કાનમાં આભૂષણો પહેરતા.<sup>૨</sup> સ્ત્રીઓએ માથે ઓઢવાનો અને પુરુષોએ ચોટલા તથા દાઢી ઢાઢી નખાવવાનો રિવાજ મોગલરાજ્ય-અમલ પછીથી જ ગુજરાતમાં પડેલો હોય એમ લાગે છે.

( અપૂર્ણ )

૧. જુઓ 'કુમારપાલ પ્રબંધ ભાષાંતર' પૃષ્ઠ ૧૦૯. ૨. જુઓ 'કુમારપાલ ચરિત્ર ભાષાંતર' પૃષ્ઠ ૪૧.

# लुप्तप्रायः जैन ग्रन्थों की सूचि

कर्ता—श्रीयुत अगरचंदजी नाहटा, कलकत्ता  
(गतांक से पूर्ण)

बृहत्टिप्पनिका उल्लिखित अलभ्य ग्रन्थः—<sup>१</sup>

| ग्रन्थनाम                                 | कर्ता     | श्लोकसंख्या     | जैनग्रन्थावली पृष्ठ संख्या |
|---|-----------|-----------------|----------------------------|
| पंचकल्प                                   |           | ११३३            | (बृहत् टिप्पनिका)          |
| *पंचकल्पनिर्युक्ति                        |           |                 | (,,)                       |
| जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्ति                 | मलयगिरि   | ९५००            | (,,)                       |
| निशीथचूर्णि-विंशोद्देशव्याख्या पार्श्वदेव |           | ११०० (सं. ११७३) | पृ० १२                     |
| महानिशीथ लघु-मध्यम-वाचना                  |           | ३५००-४२००       | ,, १६                      |
| आवश्यक चूर्णि                             |           | १८४७४           | ,, १८                      |
| *विशेषावश्यकवृत्ति                        | मलयगिरि   | ९०००            | ,, २०                      |
| चैत्यवंदनभाष्य वृत्ति                     |           |                 | ,, २४                      |
| चैत्यवंदन विचारगाथाबद्धसूत्रव्याख्यारूप   |           |                 | ,, २४                      |
| पंचपरमेष्ठिविवरण (प्राकृत गाथामय) मतिसगर  |           | २५० (सं. ११६८)  | ,, ३४                      |
| *ओधनिर्युक्तिचूर्णि                       |           |                 | ,, ४०                      |
| जीतकल्प वृत्ति विवरण                      |           | ५४३             | ,, ५४                      |
| *निरयविभक्ति                              |           | २००             | (बृहत् टिप्पनिका)          |
| न्यायप्रवेश टिप्पन                        | श्रीचंद्र | (सं. ११६८)      | पृ० ७४                     |
| सम्मतिर्कवृत्ति                           | मल्लवादी  | ७००             | ,, ८०                      |
| " "                                       |           |                 | ,, ८०                      |
| श्वेतांबर दर्शनसिद्धि                     |           | ५१९             | ,, ८२                      |
| षड्दर्शनदिङ्मात्रा विचार                  |           |                 | ,, ८३                      |
| अनेकान्तव्यवस्थापन                        |           | २००             | ,, ८४                      |
| अपशब्द निराकरण                            |           | २१५             | ,, ८४                      |
| अपौरुषेय वेदनिराकरण यशोदेव                |           | ५११             | ,, ८४                      |
| स्याद्वादरत्नाकर टिप्पन <sup>२</sup>      |           |                 | (बृहत् टिप्पनिका)          |

१ बृहत्टिप्पनिका के आधार से जैनग्रन्थावली में नोंधे गये हैं ।

\* इस चिह्न के ग्रन्थ बृहत्टिप्पनिकाकार को भी अलभ्य थे ।

१ मूल ग्रन्थ ८४००० श्लोक प्रमाण कहा जाता है । बृहत् टिप्पनिका में प्रथम खंड विना ३६००० प्रमाण नोंधित हैं, पर वर्तमान में मात्र १३००० श्लोक प्रमाण ही उपलब्ध है ।

|   |       |                       |     |
|---|-------|-----------------------|-----|
| पारमाणिक वस्तु व्यवस्थापन                                 | ८०    | पृ०                   | ८५  |
| प्रत्यक्षानुमानाधिकप्रमाणनिराकरण यशोदेव                   | ५१९   | ,,                    | ८५  |
| यतिप्रतिष्ठास्थापनस्थल अजितदेव ( पत्र २६ ) ( संवत् ११८५ ) |       | ,,                    | ८५  |
| वस्त्रव्यवस्थापन स्थल                                     |       | ,,                    | ८५  |
| न्यायकुमुदचन्द्र (दिगंबरीय) अकलंकदेव                      |       | ,,                    | ९१  |
| आत्मावबोध मल्लधारी देवप्रभ                                | ५५०   | ,,                    | १०९ |
| आनन्दसमुच्चय  |       | ,,                    | ११० |
| ज्ञानदीपिका   |       | ,,                    | ११० |
| ज्ञानांकुश  |       | ,,                    | १११ |
| समभावशतक धर्मघोष  | १०२   | ,,                    | १११ |
| सत्तरि चंद्र महत्तर                                       |       | ,,                    | ११९ |
| सत्तरिवृत्ति  | ,,    | ,,                    | ११९ |
| प्रवचन सन्दोह वृत्ति                                      |       | ,,                    | १२७ |
| *मलमसुन्दरी कथा ( प्राकृत )                               |       | ( बृहत्तट्टिप्पणिका ) |     |
| विशेषवती जिनभद्र क्षमाश्रमण                               |       | ,,                    |     |
| *विशेषणवती वृत्ति   |       | ,,                    |     |
| दूसमवुच्छेय दंडिका  | २०४   | पृ०                   | १३३ |
| ,, (द्वि)   | १०३   | ,,                    | १३३ |
| श्रावकभंगकादिविचारगाथादि वृत्ति विजयदेव                   | ५५७   | ,,                    | १३७ |
| सिद्धपंचाशिका वृत्ति ( स्वोपज्ञ ) देवेन्द्रसूरि           | ७१०   | ,,                    | १४२ |
| धर्मविधिवृत्ति जयसिंह                                     | १११४२ | ,,                    | १४९ |
| धूमावलिका वृत्ति समुद्राचार्य                             |       | ,,                    | १४९ |
| पर्वपंजिका शीलाचार्य                                      |       | ,,                    | १४९ |
| आलोचनपद संग्रह  |       | ,,                    | १५३ |
| उपधान स्वरूप देवसूरि                                      |       | ,,                    | १५३ |
| तपासमाचारी  | ७००   | ,,                    | १५६ |
| श्रावकसमाचारीवृत्ति देवगुप्त                              | १२००  | ,,                    | १५६ |
| समाचारी मल्लधारी देवप्रभ                                  |       | ,,                    | १५६ |
| आचरण शतक  |       | ,,                    | १५७ |

|                                 |  |             |
|---------------------------------|--|-------------|
| भविष्योत्तरोद्धार               |  | पृ० १६३     |
| उपदेशमालावृत्ति                 | जयसिंह (सं. ११३)                         | „ १७१       |
| ऋषिमंडलस्तव                     | २७१                                      | „ १७५       |
| ऋषिमंडलस्तववृत्ति               | ४६१४                                     | „ १७५       |
| ऋषिमंडलस्तोत्र                  | मेरुतुंग ७०                              | „ १७५       |
| गौतम भाषित                      |  | „ १७७       |
| जयन्ती प्रश्नोत्तर संग्रह       | मानतुंग                                  | „ १७८       |
| जयन्तीप्रश्नोत्तर संग्रह वृत्ति | मलयप्रभ (सं. १२६०)                       | ६६०० „ १७८  |
| तत्त्वबिन्दु                    | ७१                                       | „ १७९       |
| दानोपदेशमाला                    |  | „ १८०       |
| दानोपदेशमाला वृत्ति             | (पत्र ७१)                                | „ १८०       |
| धर्मोपदेश                       | यशोदेव ८३३२                              | „ १८२       |
| नवप्रदप्रकरणवृत्ति              | देवेन्द्र (सं. ११८२)                     | „ १८३       |
| प्रव्रज्याभिधानवृत्ति           | जिनप्रभ २४८                              | „ १८५       |
| बोधप्रदीप                       |  | „ १८५       |
| विवेकमंजरीवृत्ति                | अकलंक                                    | पृ० १८८     |
| शीलभावना                        |  | „ १८८       |
| शीलभावना वृत्ति                 | रविप्रभ (सं. १२२९)                       | ९५७० „ १८९  |
| सम्यक्त्वप्रकरणवृत्ति           | प्राकृतकथागम १२०००                       | „ १९१       |
| विषयविनिग्रह                    | कुलक                                     | „ २०३       |
| कुमारपाल प्रतिबोध               | २५७५                                     | „ २१६       |
| एकादशगणधर चरित्र                | उ. देवमूर्ति ६५००                        | „ २२१       |
| जंबू चरित्र                     | १६४४                                     | „ २२३       |
| जंबू चरित्र (प्राकृत)           | सागरदत्त (सं. १०७६)                      | २६०० „ २२३  |
| जंबू चरित्र                     | टिप्पन ११२०                              | „ २२३       |
| पृथ्वीचंद्र चरित्र              | टिप्पनक कनकचंद्र (सं. १२२६)              | ११०० „ २२७  |
| मनोरमाचरित्र                    | अभयदेवसूरिशिष्य वर्द्धमानसूरि (सं. ११४०) | १५००० „ २२९ |
| शांब चरित्र                     | १०७०                                     | „ २३३       |
| श्रीपार्श्व १० गणधर चरित्र      | ४३५०                                     | „ २३४       |

|   |   |       |         |
|---|---|-------|---------|
| सप्तक्षेत्री                                | गुणाकर ( सं. ११७८ )                       | ७२००  | पृ० २३५ |
| सीताचरित्र                                  | ३४००                                      |       | ” २३६   |
| सुदर्शना चरित्र ( प्राकृत )                 | मल्लधारी देवप्रभ                          |       | ” २३६   |
| हरिवंश चरित्र                               | ९०००                                      |       | ” २३७   |
| हरिवंश चरित्र बंदिक्कवि                     | ९०००                                      |       | ” २३७   |
| *आदिनाथ चरित्र                              | ( संस्कृत )                               |       | ” २३७   |
| *अजितनाथ चरित्र                             | ( प्राकृत )                               |       | ” २३८   |
| *अजितनाथ चरित्र                             | ( संस्कृत )                               |       | ” २३८   |
| *संभवनाथ चरित्र                             | ( संस्कृत )                               |       | ” २३८   |
| *अभिनंदन चरित्र                             | ( प्राकृत )                               |       | ” २३८   |
| *अभिनंदन चरित्र                             | ( संस्कृत )                               |       | ” २३८   |
| *सुमतिनाथ चरित्र                            | ( संस्कृत )                               |       | ” २३९   |
| *पद्मप्रभ चरित्र                            | ( प्राकृत )                               |       | ” २३९   |
| *सुपार्श्वनाथ चरित्र                        | ( संस्कृत )                               |       | ” २३९   |
| *सुविधिनाथ चरित्र                           | ( प्राकृत )                               |       | ” २३९   |
| सुविधिनाथ चरित्र                            | ( संस्कृत )                               |       | ” २३९   |
| *शीतलनाथ चरित्र                             | ( प्राकृत )                               |       | ” २३९   |
| *शीतलनाथ चरित्र                             | ( संस्कृत )                               |       | ” २३९   |
| श्रेयांसनाथ चरित्र गा. ६५८४                 | हरिभद्र (जयसिंह राज्ये स्तंभतीर्थ में था) | २४०   |         |
| *विमलनाथ चरित्र                             | ( प्राकृत )                               |       | ” २४०   |
| *विमलनाथ चरित्र                             | ( संस्कृत )                               |       | ” २४०   |
| अनंतनाथ चरित्र ( प्राकृत )                  | नेमिचंद्र ( सं. १२१६ )                    | १२००० | ” २४१   |
| *धर्मनाथ चरित्र                             | ( प्राकृत )                               |       | ” २४१   |
| *धर्मनाथ चरित्र ( संस्कृत )                 | नेमिचंद्र ( जै. प्र. में धर्मचंद्र ! )    |       | ” २४१   |
| *कुन्थुनाथ चरित्र ( प्राकृत )               |   |       | ” २४२   |
| *अरनाथ चरित्र ( प्राकृत )                   |   |       | ” २४२   |
| *अरनाथ चरित्र ( संस्कृत )                   |   |       | ” २४२   |
| मल्लिनाथ चरित्र जिनेश्वर ( सं. ११७५ वर्षे ) | ५५५५                                      |       | ” २४२   |
| मल्लिनाथ चरित्र ( काव्यमय )                 | हरिभद्र ( कुमारपालराज्ये )                | ९०००  | ” २४२   |

|   |                            |        |
|---|----------------------------|--------|
| *नमिनाथ चरित्र ( प्राकृत )                                      |                            |        |
| *नमिनाथ चरित्र ( संस्कृत )                                      |                            |        |
| महावीरस्वामी चरित्र ( प्राकृत ) नेमिचंद्र ( सं. ११३९ )          | १८१०                       | ,, २४५ |
| *महावीरस्वामी चरित्र ( संस्कृत )                                |                            | ,, २४५ |
| कुसमसार कथा नेमिचंद्र ( सं. १०९९ )                              | १७००                       | ,, २५१ |
| *जयसुन्दरी कथा ( प्राकृत )                                      |                            | ,, २५२ |
| नर्मदासुन्दरी कथा   | १७००                       | ,, २५४ |
| पंचाख्यान ( प्राकृत )   | ३१८                        | ,, २५५ |
| *पूज्याष्टक कथा ( संस्कृत )                                     |                            | ,, २५५ |
| लीलावती कथा   | १४३८                       | ,, २५९ |
| सर्वाङ्गसुन्दरी कथा ( प्राकृत )                                 | २६७५                       | ,, २६१ |
| कथाकोष गा. २३९ व वृत्ति जिनेश्वर ( सं. ११०८ )                   | ६०००                       | ,, २६६ |
| धर्माख्यानक कोश वृत्ति ( प्राकृत बहु कथामयी ) ( पत्तने )        |                            | ,, २६७ |
| शत्रुंजय कल्प पालित्रयसूरि                                      |                            | ,, २७१ |
| अजिन्तशान्तिस्तववृत्ति  |                            | ,, २७२ |
| चतुर्विंशति जिनस्तव मल्लधारी देवप्रभ                            |                            | ,, २७६ |
| चतुर्विंशति जिनस्तुति वृत्ति दि० प्रभाचंद्र                     | १५४१                       | ,, २७७ |
| जनेन येनस्तुतिवृत्ति  | ३०५                        | ,, २७८ |
| भयहरस्तोत्रमवृत्ति  |                            | ,, २८५ |
| वीरस्तव   | धनपाल                      | ,, २९० |
| वीरस्तववृत्ति   | सूराचार्य                  | ,, २९१ |
| मुष्टि व्याकरण  | मलयगिरि                    | ,, २९८ |
| हैम व्याकरण मूलसूत्रो   | ११००                       | ,, २९८ |
| *हैम व्यास  | रामचंद्र गाथा ५३०००        | ,, २९९ |
| हैम समास तद्धितसार प्रकरण                                       |                            | ,, ३०२ |
| हैम कारक समुच्चय  | श्री प्रभसूरि ( सं. १२८० ) | ,, ३०२ |
| हैम कारक वृत्ति ( अधिकार त्रयात्मक ) श्री प्रभसूरि ( सं. १२८० ) |                            |        |
|   | ( आद्य द्वयवृत्ति युक्त )  | ,, ३०२ |
| कौमारसार समुच्चय  | ३१००                       | ,, ३०४ |

| ५७२                     | श्री जैन सत्य प्रकाश   | ७६  |
|-------------------------|------------------------|-----|
| कौमारसार उणादि वृत्ति   |                        | २०४ |
| गाथारत्नकोष             | ७३                     | २१७ |
| जयदेव टिप्पन            | श्रीचंद्र              | २१८ |
| नेमिचरित्र महाकाव्य     | सूराचार्य (सं. १०९०)   | २३१ |
| नमिचरिय महाकाव्य टिप्पन | १४००                   | २३१ |
| अनर्घराघव टिप्पन        | देवप्रभसूरि ७५००       | २३६ |
| मानमुद्राभंजन नाटक      | देवचंद्र गणि १८००      | २३७ |
| राधवाभ्युदय नाटक        | रामचंद्र               | २३८ |
| वनमाला नाटिका           | पं. अमरचंद्र           | २३८ |
| सुभाषित समुद्र          | धर्मकुमार              | २४१ |
| दानादि प्रकरण           | मूराचार्य (पत्र ३४)    | २४० |
| आय प्रश्न               | ७०                     | २४६ |
| आयसद्भाव                | १९५                    | २४६ |
| आयसद्भाववृत्ति          | १६००                   | २४६ |
| पंचांग तिथि विवरण       | १९०                    | २४८ |
| प्रश्न प्रकाश           | नरचंद्र                | २४८ |
| हर्ष प्रकाश             | हर्ष देवगणि            | २५० |
| खेलवाडी                 | माह्य १३९७             | २५५ |
| नाडी संचार ज्ञान        |                        | २५५ |
| नाथपुस्तिका             |                        | २५५ |
| पीपलिका ज्ञान           |                        | २५५ |
| पुस्तकेन्द्र ग्रन्थ     |                        | २५५ |
| रुतज्ञान                |                        | २५६ |
| सामुद्रिक               | ६७                     |     |
| सिद्धाज्ञा पद्धति       |                        |     |
| हरिमेखला                |                        |     |
| शकुनसारोद्धार           | माणिक्यसूरि (१३३८) ५०८ | २५६ |
| धनुर्विद्या             |                        | २६२ |
| धनुर्विद्या वृत्ति      |                        | २६२ |
| भरत शास्त्र             |                        |     |



## लुप्तप्रायः दिगम्बर जैन ग्रन्थ\*

| ग्रन्थ नाम   | कर्ता                  | उल्लेख स्थान   |
|--|------------------------|--|
| १ जीव सिद्धि सं.                                     | स्वामी समंतभद्र        | जिनसेनकृत हरिवंश पुराण   |
| २ तत्त्वार्थ सूत्र टीका ( तत्त्वार्थालंकार ) शिवकोटि |                        | श्रवण बेलगोल लेख नं. १०५   |
| ३ नवखोत्र सं.  | वज्रनन्दी              | " " नं. ५४   |
| ४ सुमति सप्तक सं.                                    | सुमतिदेवाचार्य         | " " नं. ५४   |
| ५ अथशब्द वाच्य सं.                                   | वक्रप्रोव महावादि मुनि | " " "  |
| ६ चूडामणि सं.  | श्रीवर्द्धदेव          | " " "  |
| ७ तत्वानुशासन सं.                                    | स्वामी समंतभद्र        | जैनहितैषी भा. १४ पृ. ३१२   |
| ८ जल्पनिर्णय सं.                                     | श्री दत्ताचार्य        | विद्यानंदकृत तत्त्वार्थ श्लोक वार्तिक                              |
| ९ वादन्याय सं.                                       | कुमार नंदाचार्य        | " " पत्र परीक्षा   |
| १० प्रमाण संप्रह भाष्य                               | अनंतवीर्याचार्य        | सिद्धिविनिश्चय टीका  |
| ११ न्यायविनिश्चय मूल स्वोपज्ञभाष्य अकलंक देव         |                        | " एवं न्याय की टोका  |
| १२ त्रिलक्षण कदर्थन सं. पात्रकेसरीस्वामी             |                        | " "  |
| १३ स्याद्वाद महार्णव सं.                             |                        | न्यायविनिश्चयालंकार  |
| १४ विद्यानंद महोदय सं.                               | विद्यानंदाचार्य        | विद्यानंदादि   |
| १५ कर्मप्राभृत टीका सं.                              | स्वामी समंतभद्र        | इंद्रनंदिकृत श्रुतावतार  |
| १६ सन्मति तर्क टीका सं.                              | सन्मत्याचार्य          | वादिराजकृत पार्श्वनाथ चरित्र                                       |
| १७ जीव सिद्धि  | अनंतकीर्ति आचार्य      | " "  |
| १८ सिद्धिभूपद्धति टीका सं.                           | वीरसेनाचार्य           | गुणभद्रकृत उत्तरपुराण  |
| १९ सुलोचना सं.                                       | महासेनाचार्य           | जिनसेनकृत हरिवंश पुराण   |
| २० वरांग चरित्र सं.                                  | रविषेणाचार्य           | " "  |
| २१ मार्गप्रकाश सं.                                   |                        | नियमसार टीका   |
| २२ श्रुति बिन्दु                                     |                        | " "  |
| २३ राद्धान्त सं.                                     | आर्य देवाचार्य         | मल्लिषेण प्रशस्ति, श्रवण बेलगोल लेख नं. ५४, वीरनंदि कृत आचार सार । |

\* अनेकान्त पत्र के प्रथम वर्ष, प्रथम किरण के टाइल पेज ४ पर से उपर्युक्त सूची ली गई है । इनका विशेष परिचय ( सप्रमाण चर्चा ) किरण ४, पृ. २५४ में देखना चाहिए ।

|  |   |
|--|---|
| २४ सिद्धांत सार (तर्कग्रंथ) सं.                    | जयशेखरसूरिकृत षट्दर्शन समुच्चय            |
| २५ वागर्थ संग्रह पुराण कवि परमेष्ठी                | जिनसेनकृत आदिपुराण                        |
| २६ प्रमाण संग्रह स्वोपज्ञ भाष्य <sup>१</sup> अकलंक | सिद्धिविनिश्चय अनंतवीर्य के भाष्य में     |
| २७ सिद्धिविनिश्चय स्वोपज्ञ भाष्य <sup>१</sup> ,,   | ,,  |
| २८ न्याय चूलिका ,,                                 | जैन सिद्धांत भास्कर भा.३, किरण ४, पृ. १६० |

जैन साहित्य का पार पाना समुद्र के समान दुष्कर है। इस समाज का साहित्य इतना विशाल है कि उसके नाम मात्र की सूची के तैयार करने में वर्षों की आवश्यकता है, और फिर भी पूर्ण होना तो असम्भव ही है। अतः इस सूची के अतिरिक्त और भी सैकड़ों ग्रन्थ ऐसे होंगे जिनके अस्तित्व का पता अन्य ग्रन्थों से मिलता है पर अद्याविधि वे हमें उपलब्ध नहीं हुए हैं। उन सब ग्रन्थों की एक विस्तृत सूची प्रकाशित होना नितान्त आवश्यक है, जिससे खोज शोध करनेवाले को अलावा ग्रन्थों का पता लगाने और जनता के सामने प्रकाशित करने में सुभीता हो जाय।

ग्रन्थों के लुप्त हो जाने में हमारी अकर्मण्यता, उपेक्षा और खोज, शोध व साहित्य प्रेम का अभाव ही मुख्य कारण है। न तो मेरा प्राचीन जैन साहित्य का अध्ययन ही विशाल है और न मैं विद्वान् ही हूँ और यह कार्य विशाल अध्ययनवालों का है, पर अपनी उत्कृष्ट साहित्य-रुचि के आधीन होकर मैंने यथासाध्य खोज कर यह सूची निर्माण की है। आशा है साहित्यसेवी विद्वानों का इस ओर ध्यान आकृष्ट होगा और वे अपने अपने अनुभव को लेखरूप में जनताके समक्ष प्रकाशित करेंगे। जिससे इस परमावश्यक कार्य का सुसम्पादन हो सकेगा।

जैन साहित्य के गहन अभ्यासी विद्वानों को विज्ञप्ति करता हूँ कि वे शीघ्र ही अपने अपने अध्ययन में जैन साहित्य के लुप्तप्रायः जैन ग्रन्थों के नामादि देखे उनको पत्रों में सप्रमाण प्रकाशित करने की कृपा करें।

खोज शोध प्रेमी सज्जनों से निवेदन है कि इस सूची में उल्लिखित ग्रन्थों में से कोई ग्रंथ किसे मिले तो मुझे सूचित करने की या इसी पत्र में उसका परिचय प्रकाशित करने की कृपा करें। (समाप्त)

१. नं. २६-२७ मूल ग्रन्थ श्वेतांबर भंडारों में से प्राप्त हो चुके हैं। देखें जैनसिद्धान्त भास्कर भाग ३ किरण १ में "भट्टारक अकलंक के और एक अलभ्य ग्रन्थ की प्राप्ति" नामक पं. सुखलालजी का लेख।



(ક્રમાંક ૨૧થી ચાલુ)

શ્વેતામ્બર જૈનોએ અજ્ઞાનાદિક દોષો ન હોય ત્યાં કુદેવત્વ ન હોય એમ જણાવી અજ્ઞાનાદિ દોષોની સાથે કુદેવત્વની વ્યાપ્તિ માની અજ્ઞાનાદિનો અભાવ જ્યાં હોય ત્યાં કુદેવપણું ન હોય એમ જણાવતાં અદ્વારસ્ત વિપ્પનટ્ટા નમામિ દેવાદિ-દેવંતં એમ કહી, સ્પષ્ટ શબ્દોમાં કહ્યું કે દેવાધિદેવમાં કુદેવત્વના વ્યાપક એવા અઠાર અજ્ઞાનાદિ દોષો હોતા નથી અને તેથી તે દેવાધિદેવ ગણાય એટલે તેમને હું નમસ્કાર કરું છું.

દોષરહિતપણા માત્રથી દેવત્વ ન આવે :

આવી રીતે માન્યતા હોવાથી શ્વેતામ્બરોના હિસાબે જ્યાં જ્યાં અજ્ઞાનાદિ અઠાર દોષોનો અભાવ હોય ત્યાં ત્યાં કુદેવત્વનો અભાવ છે એમ માન્યું પણ શ્વેતામ્બરોના શાસ્ત્રો પ્રમાણે જ્યાં જ્યાં અઠાર દોષોનો અભાવ છે ત્યાં ત્યાં કુદેવત્વ છે એમ અઠાર દોષના અભાવની સાથે કુદેવત્વની વ્યાપ્તિ લીધેલી નથી. અને તેથી જ ભગવાન જિનેશ્વર સિવાયના સામાન્ય કેવલજ્ઞાની મહારાજોએ અજ્ઞાનાદિક અઠારે દોષોએ કરીને રહિત હોય છે તોપણ તે ગુરુતત્ત્વમાં ગણાય છે, પણ દેવતત્ત્વમાં ગણાતા નથી. કેવલિનો પરમોદિ વિઝલમઈસુયહરા જિણમયમ્મિ આયરિય ઉવજ્ઞાયા તે સઘ્વે સાહુણો સરણં આ પ્રમાણે ભગવાન વીરમહારાજના હસ્તકમલથી દીક્ષિત થયેલા વીરભદ્ર મહારાજે 'ચરસરણ પયન્ના'માં કેવલજ્ઞાની મહારાજને પણ, જો તે જિન નામકર્મના ઉદ્ય વગરના હોય તો તેમને, સાધુપણામાં જ લીધેલા છે.

જૈન જનતા સારી રીતે જાણી શકે છે કે જૈન શાસ્ત્ર પ્રમાણે ચોવીસ તીર્થંકરોને જ શરીરવાળા દેવ તરીકે ગણવામાં આવે છે. એક અવસર્પિષ્ણી કે એક ઉત્સર્પિષ્ણીમાં ભગવાન જિનેશ્વર મહારાજની સંખ્યા ચોવીસની જ હોય છે અને તેથી જ ચોવીસી એમ કહેવાય છે. પણ કેવલજ્ઞાની મહારાજોની સંખ્યા તો દરેક ઉત્સર્પિષ્ણી કે અવસર્પિષ્ણીમાં અસંખ્યાતની હોય છે અને તેથી જો કેવલી મહારાજ કે જેઓ અજ્ઞાનાદિક અઠારે દોષોએ કરીને રહિત છે, તેઓને જો દેવ તરીકે ગણવામાં આવે તો ઉત્સર્પિષ્ણી

અને અવસર્પિષ્ણીમાં ચોવીસીનેા નિયમ નહીં રહે, તો દેવોની સંખ્યા અસંખ્યાતી થાય એ વસ્તુ વિચારનારો મનુષ્ય સહેજે સમજી શકે છે કે અજ્ઞાનાદિ અઢાર દોષોએ કરી રહિતપણું તે કુદેવત્વનું લક્ષણ નથી પણ કુદેવત્વના અભાવને જણાવનારું છે.

**કર્મોની સાથે આહારનો સંબંધ:**

પણ દિગમ્બર ભાઈઓ જે અઢારે દોષો માને છે તે કુદેવત્વની સાથે વ્યાપેલા જ નથી, કારણ કે જ્ઞાનાવરણીય આદિ ઘાતિ કર્મની સત્તા કુદેવત્વના નાશને નચાવનાર છે અને તેના જવાથી જ કુદેવત્વ ચાલ્યું જાય છે એ એક સ્વાભાવિક છે, પણ ક્ષુધા અને તૃષ્ણા એ બે દોષો જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય કે અન્તરાયના ઉદયથી નથી, કેમકે જે જ્ઞાનાવરણીયાદિના ઉદયથી માનીએ તો શું તે ક્ષુધા, તૃષ્ણા જ્ઞાનાવરણીયનું પરાક્રમ છે? કહેવું પડશે કે કદાપિ નહી, કેમકે આપણે દેખીએ છીએ કે અલ્પ આહારવાળો પણ વધારે ઓછા જ્ઞાનવાળો હોય છે અને વધારે આહારવાળો પણ વધારે ઓછા જ્ઞાનવાળો હોય છે. મનુષ્ય કરતાં હાથીનું શરીર મોટું છતાં તેનામાં જ્ઞાન અલ્પ હોય છે અને પૃથ્વી કાયિકાદિક કરતાં મનુષ્યનું શરીર મોટું અને આહાર વધારે હોય છે છતાં તે કેવલજ્ઞાન સુધીનું જ્ઞાન મેળવી શકે છે. આ વસ્તુ સહેજે બાળક પણ સમજી શકે તેવી છે. અને તેથી આહારના અભાવની સાથે જ્ઞાનની વૃદ્ધિનો સંબંધ કે આહારની હાનિ સાથે જ્ઞાનની હાનિ કોઈ પણ સમજહાર માની શકે તેમ નથી. દર્શનાવરણીયના ઉદયને અંગે જે વિચારીએ તો તો જેમ જેમ આહારનો આંતરો થાય તેમ તેમ ચક્ષુઆદિકની શક્તિ ઓછી થાય છે અને દર્શનાવરણીયનો ઉદય કરવામાં જ આહાર અને પાણીનો અભાવ કારણ બને છે અને તેથી જ શાસ્ત્રકારો ઈર્યાસમિતિ માટે આહારપાણીનું ગ્રહણ સાધુઓએ કરવું એમ સ્પષ્ટ શબ્દોમાં શાસ્ત્રોમાં જણાવે છે. આહારપાણિના અભાવે ઇન્દ્રિયોની હાનિ થવાને લીધે જ શાસ્ત્રકારોએ તપના અધિકારમાં 'સોહુ તવો કાયવ્વો જેણ ન હંદિયહાની' અર્થાત્ જે તપસ્યાએ કરીને ઇન્દ્રિયોની હાનિ ન થાય તેવો તપ કરવો અર્થાત્ ઇન્દ્રિયોની હાનિ ન થાય તેવી રીતે ક્ષુધા અને તૃષ્ણા સહન કરવી. આ ઉપરથી સ્પષ્ટ થશે કે ક્ષુધા અને તૃષ્ણા દર્શનાવરણીયના ઉદયથી થયેલી વસ્તુ નથી પણ ક્ષુધા અને તૃષ્ણા ઊલટી દર્શનાવરણીયના ઉદયને કથચિત્ કરવાવાળી છે.

**ઘાતિકર્મના સહચારીપણા વિષે વિચારણા:**

વળી જૈન જનતાએ વિચારવાનું છે કે દિગમ્બરોએ માન્ય કરેલા એવા તત્ત્વર્થસૂત્રમાં ક્ષુધા અને તૃષ્ણાના પરિષદો જણાવવામાં આવ્યા છે અને તેમાં

નિરવદ્ય લોજન કર્યા છતાં અને પ્રાસુક અને એષણીય પાણી પીવાતાં છતાં ક્ષુધા અને તૃષ્ણા પરિષદનો જ્ય માનેલો છે. જો ક્ષુધા અને તૃષ્ણા ઘાતિકર્મના ઉદયથી કે દર્શનાવરણીયના ઉદયથી હોત તો લોજન અને પાનની સાથે પરિષદનું જીવનું અનત જ નહીં. જેમ સમ્યક્ત્વ પરિષદમાં મિથ્યાત્વને ધારણ કરવા સાથે સમ્યગ્દર્શન પરિષદનો જ્ય અને જ નહીં, તેમ ક્ષુધા અને તૃષ્ણા પરિષદ પણ દર્શનાવરણીય કે ઘાતિના ઉદયથી હોત તો યોગ્ય લોજન અને યોગ્ય પાણી પીવાની સાથે અનત જ નહીં. વળી ક્ષુધા અને તૃષ્ણાના પરિષદને તત્ત્વાર્થસૂત્રકારે માત્ર વેદનીયમાં જ ગણેલો છે પણ જ્ઞાનાવરણીયાદિ ઘાતિકર્મમાં ગણેલો નથી. દિગંબરોના હિસાબે તો તે ક્ષુધા અને તૃષ્ણાના પરિષદને ઘાતિકર્મમાં જ ગણવો જોઈતો હતો.

### ગુણઠાણાના અંગે પરિષદોની વિચારણા :

વલી ગુણઠાણાના વિભાગમાં પણ બાહર સંપરાય સુધી સર્વ પરિષદો માની સૂક્ષ્મસંપરાય ને છદ્મસ્થ વીતરાગમાં ચૌદ પરિષદો માન્યા અને જિનેશ્વરમાં અગિયાર પરિષદો માન્યા. આ સ્થાને જો ક્ષુધા અને તૃષ્ણા એ બે પરિષદો ઘાતીના ઉદયથી હોત તો જિનેશ્વરોમાં અગિયાર પરિષદો કહેવાનો વખત આવત જ નહીં.

### શ્રી ઉમાસ્વાતિજીનું પચાદશ જિને સૂત્ર :

બાહર સંપરાયમાં સર્વ પરિષદોનું વિધાન છે. સૂક્ષ્મસંપરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગમાં ચૌદ પરિષદો છે એમ કહી ગુણઠાણાઓમાં કેટલા કેટલા પરિષદો છે એ જણાવવાનો અધિકાર ચાલે છે તેથી 'પચાદશ જિને' એ સૂત્રમાં પણ સ્પષ્ટપણે જિનેશ્વર મહારાજના અગિયાર પરિષદો જણાવ્યા છે, છતાં જેઓને ગણધર મહારાજનાં સૂત્રો ઉઠાવી લેવાં છે, ઉત્તરાધ્યયન અને દશવૈકાલિક સરખાં નાનાં નાનાં સૂત્રો સહજે સામાન્ય મનુષ્ય કંઈ રાખી શકે એવાઓનાં પણ વ્યુત્કેદ માની પોતાના આચાર્યોની યુદ્ધિની નામોશી કરવી છે, તેવા દિગંબરો ઉમાસ્વાતિ વાચકજી મહારાજને પણ ઉચલાવવા ચૂકતા નથી. અને તેથી 'પચાદશ જિને' એ સૂત્રમાં સ્પષ્ટ રીતે કેવલ મહારાજને ક્ષુધાતૃષ્ણાદિક અગિયાર પરિષદો જે હોય છે તે જણાવેલા છે છતાં તેમાં તે દિગંબરો નિષેધવાચક નકાર શબ્દ પોતાના તરફથી, મતના આગ્રહને લીધે, ઉમેરીને જિનેશ્વરોના અગિયાર પરિષદો નથી એવો અર્થ કરે છે. મધ્યસ્થ સમગ્ર મનુષ્ય સ્પષ્ટપણે સમજી શકે તેમ છે કે વિધિના અધિકારમાં દિગંબરો નકાર જોડી દે એના જેવો બીજો બુદ્ધિમં કયો ? પણ ધ્યાન રાખવું કે દિગંબરોને માટે

તો એવી રીતે સૂત્ર અને અર્થના પાઠને ઉથલાવવાનું કામ કર્યો છતાં, પરિષદોની એકંદર સંખ્યા બાવીસની હતી તેથી તે બાવીસમાંથી અગિયાર નહોય એમ કહેવાથી પણ છેવટે અગિયારના અગિયાર જ રહ્યા. સામાન્ય બાલકો પણ સમજી શકે કે બાવીસમાંથી અગિયાર બંધ એટલે શેષ અગિયાર જ બચે. એટલે દ્વિગ્ભરોએ નકારનો અધ્યાહાર કર્યો અને અગિયાર પરિષદો જિનેશ્વરોમાં ન હોય એવો અર્થ કર્યો તોપણ તે અગિયાર તો જિનેશ્વર ભગવાનમાં અર્થાપત્તિથી રહ્યા જ.

**તત્ત્વાર્થ સૂત્ર ફેરવવા માટેનો તેમનો પ્રયત્ન :**

કદાચ કહેવામાં આવે કે શ્વેતામ્બરો જિનેશ્વરોમાં અગિયાર પરિષદો માને છે તેના નિષેધને માટે ઉમાસ્વાતિ મહારાજે આ સૂત્ર કહેવું છે તો આ કથન પણ દ્વિગ્ભરોને કોઈ પણ રીતે ઈષ્ટ નથી, કારણ કે દ્વિગ્ભરો જુનામાં જુના અન્ય તરીકે આ તત્ત્વાર્થ સૂત્રને માને છે અને જો તે તત્ત્વાર્થ સૂત્ર કરતાં પણ પહેલાં જો શ્વેતામ્બરોનો મત હોય તો તે વચનથી દ્વિગ્ભરોનું કૃત્રિમપણું આપોઆપ સિદ્ધ થઈ જાય એટલે દ્વિગ્ભરોના કલ્પિતપણાની સાબીતી કરવા માટે નવાં પ્રમાણોની જરૂરત રહે નહીં, કેમકે પોતાના વચનથી જ પોતાનું કૃત્રિમપણું સાબીત થાય છે. વળી ક્ષુધા અને તૃષ્ણાને દ્વિગ્ભરો પણ જ્ઞાનવરણીય, દર્શનાવરણીય કે અન્તરાયના ઉદયથી તો થયેલા માનતા જ નથી. પણ મોહનીયના ઉદયની સાથે રહેવાવાળા માને છે. તો પછી છદ્મસ્થ વીતરાગને મોહની કર્મનો સર્વથા ઉપશમ કે ક્ષય હોય છે, પરંતુ અંશે પણ ઉદય હોતો નથી તો છદ્મસ્થ વીતરાગને સૂત્રકારે ચૌદ પરિષદો કહ્યા તેમાં ક્ષુધા અને તૃષ્ણા બંને આવી જશે તે માટે દ્વિગ્ભરો શું કરશે ? કહેવું પડશે કે પચાદશ જિને એ સૂત્રમાં ન પકડાયા તોપણ ‘સૂક્ષ્મસંપન્નય છદ્મસ્થવીતરાગયોઞ્ચતુર્દશ’ એ સૂત્રમાં તો એવા પકડાયા કે દ્વિગ્ભરોને છુટવાનો રસ્તો જ નથી.

**ક્ષુધા અને તૃષ્ણાનું નિમિત્ત શું ?**

વડી જો ક્ષુધા અને તૃષ્ણા મોહને અંગે સહચરિત હોત તો સૂક્ષ્મ સંપન્નય અને છદ્મસ્થ વીતરાગની અંદર પરિષદોની સંખ્યાનો ફરક જ પડત, કેમકે સંપન્નયમાં અંશ પણ કષાય છે અને તેથી ત્યાં દ્વિગ્ભરોના હિસાબે કદાચ ક્ષુધા-તૃષ્ણા રહી શકત પણ છદ્મસ્થ વીતરાગમાં તો, મોહના ઉદયની સાથે જ રહેવાવાળી ક્ષુધા, તૃષ્ણા છે એવી માન્યતા દ્વિગ્ભરોની હોવાથી છદ્મસ્થ વીતરાગપણાની વખત તો તે ક્ષુધા તૃષ્ણા રહી શકત જ નહીં. અને તેથી

સૂક્ષ્મ સંપરાય અને છદ્મસ્થ વીતરાગને એકસરખી સંખ્યાવાળા પરિષદો હોઈ શકે જ નહીં. વળી દિગંબરો ક્ષુધા અને તૃષ્ણાને મોહના ઉદયની સાથે રહેવાવાળી માને તો તે શું ક્ષુધા-તૃષ્ણાને નોકષાય મોહનીયની સાથે રહેવાવાળી ગણે કે કષાય મોહનીયની સાથે રહેવાવાળી ગણે? ધ્યાન રાખવું કે સૂક્ષ્મ-સંપરાય ગુણસ્થાનકે એક પણ નોકષાય મોહનીય પ્રકૃતિનો ઉદય નથી હોતો છતાં ત્યાં ક્ષુધા અને તૃષ્ણા પરિષદ છે જ. વળી કષાય મોહનીયના ઉદયની સાથે ક્ષુધા તૃષ્ણાનો સફલાવ માને તો છદ્મસ્થ વીતરાગમાં તો એકે કષાય મોહનીય નથી અને સૂક્ષ્મ સંપરાયમાં જે સૂક્ષ્મ લોભ ઉદયમાં ગણાય છે, તે સૂક્ષ્મ લોભ ક્ષુધા તૃષ્ણાની સાથે રહી શકે એમ તેઓને માનવું જ પડે, અને જે એમ માનવા બંધ તો કેવળ લોભ નામના કષાયનો ક્ષુધા તૃષ્ણા સાથે સંબંધ થાય અને તેમ થતાં ક્રોધ, માન, માયા નોકષાય મોહનીય તે ક્ષુધા તૃષ્ણાના સહચર બને નહીં અને તેથી બાહર સંપરાયમાં પણ લોભના ઉપયોગ-વાળા હોય ત્યારે જ ક્ષુધા તૃષ્ણા હોય. પણ લોભ કષાયમાં નહીં પરિણુમેલા જીવો જેઓ ક્રોધાદિકમાં ઉપયોગવાળા જે વખતે હોય તે વખતે આહાર-રહિતપણું માનવું પડશે; એટલે ૧૦-૧૨-૧૩ માં ગુણકાણે તો શું પણ બાહર સંપરાયમાં ક્ષુધા તૃષ્ણાની ભજના થઈ પડશે અને આહાર સિવાયના તો જીવો માત્ર વિગ્રહ ગતિવાળા, કેવલીસમુદ્ઘાતવાળા અયોગી અને સિદ્ધના જીવો જ હોય છે. બાકીના બધા પ્રતિ સમયે આહારી હોય છે, આ બધી વસ્તુ દિગંબરોને ખરેખર ખખડાવી નાખશે.

ખરી રીતે ક્ષુધા અને તૃષ્ણા જ્ઞાનાવરણીયાદિ ચાર ધાતિકર્મના ઉદયથી થવાવાળી પણ નથી તેમ તે ધાતિકર્મના ઉદયની સાથે જ રહેવાવાળી હોય એમ પણ નથી અને તેથી ક્ષુધા તૃષ્ણાનો અભાવ જણાવવાદ્વારાએ કુદેવત્વનો અભાવ જણાવી શકાય જ નહીં. પણ દિગંબરોનો, માત્ર ઉપકરણો ન માનવાં એવો મત થયો અને તેથી માધુકરી-વૃત્તિ છોડીને એક ઘેરે ભોજન કરવાનું થયું. બાળ, ગ્લાન, વૃદ્ધ કે અસમર્થને અન્નપાન કે ઔષધાદિ લાવી દેવાનું રહ્યું નહીં. અને ભગવાન જિનેશ્વર મહારાજ કેવલજ્ઞાન પામ્યા પછી ભિક્ષા માટે ભમે નહીં તેથી ફરજિયાત રીતે દિગંબરોને કેવલી મહારાજના આહાર પાણીને ઉઠાવી દેવાની જરૂર પડી અને તે આહાર પાણી ઉઠાવી દેવાથી ક્ષુધા અને તૃષ્ણાને દોષરૂપે માની અહાર દોષમાં નાખી દીધા. આવી રીતે ક્ષુધા તૃષ્ણાનો પુનઃ વિચાર કર્યો અને જન્મ દોષનો વિચાર આગળ કહેલો હોવાથી વૃદ્ધત્વ વગેરે દોષોનો આગળ ઉપર વિચાર કરીશું.

( અપૂર્ણ )

# पुरातन धर्तिष्वास अने स्थापत्य

संग्राहक

## (१) मांडवगढ संबंधी लेख नन्दलालजी लोढा, बदनावर (मालवा)

(७) सं० १४८३ वै० श्रु० ५ शुक्रे श्री कोरंट गच्छे ॥ श्री नन्नाचार्यसंताने उपकेशजाती शा.....भा० रूपादे पुत्र सा० हेम भा. भरमी पुत्र साह सांगणेन निज मातृ श्रेयसे श्री संभवनाथ बिंबंका.....श्री ककरसूरिभिः ॥

यह लेख सफेद पाषाण की लंगोटावाली खंडित मूर्ति के पाटली के पीछे है। कमर से नीचे का भाग का हिस्सा होकर उसके भी दो टुकड़े हैं। यह मांडवगढ जैन कारखाने के कंपाऊंड में से मिला हुआ उतारा है।

(८) संवत् १९६४ के वैसाख शुद्धी १० के रोज धारनेरेश श्री उदाजीराव महाराज की राज्यसत्तागत श्री मांडवघ(ग)ढ में तपागच्छालंकार भट्टारक श्री विजयानंद-सूरीश्वर उर्फ आत्मारामजी महाराज के शिष्यरत्न पंडितप्रवर श्री लक्ष्मीविजयजी महाराज इनां के शिष्य मुनिराज श्री हंसविजयजी महाराज के सदुपदेशसे खानदेश में आया हुआ श्री आमलनेर वास्तव्य तपागच्छीय श्रावकवर्य शाह रूपचंद्र मोहनचंद्र की माताजी श्रीमती चूनाबाई स्वपुत्रवधू रूपाबाई तथा अपनी बहिन सीताबाई सहित ने पाषाणादि मयी दरवाजा युक्त धर्मशाला बनवाई तिसका काम चलता था इतने में धर्मशाला के अंदर की जमीन का समार काम करते करते श्री जिनेश्वर देव की पुरागी ९ मूर्तियां निकल आई तिसका प्रतिष्ठा महोत्सव सहित पंचमी तप का उजमणा महोच्छव भी यहां आकर कुंकुम पत्रिका द्वारा श्री संघ को एकत्र करके बड़े समारोह से इसी श्राविका ने पुष्कल द्रव्य खर्च के किया। यह शिलालेख पंच्यास श्री संपदविजयजी गणी ने लिखा। यह लेख मांडवगढके जैन कारखाने के कंपाऊंड के अंदर प्रवेश करते ही शुरु के बड़े दरवाजे के दाहिने तरफ की दरवाजे की शाख ( दीवाळ ) में लगा हुआ सफेद पाषाण की फरसीपर खुदा हुआ होकर रास्तेगीरां को देखने में आता रहता है।

(९) संवत् १९६४ वर्षे वैसाख शुक्लपक्षे दशमी तिथी श्री मंडपदुर्गे धारनेरेश श्रीमदुदाजीरावविजयराज्ये श्री तपागच्छालंकार भट्टारक श्री विजयानंदसूरीश्वराणां पंडित प्रवर श्रीयुत लक्ष्मीविजयमुनिपुंगवत्राणां सुशिष्य मुनीश श्री हंसविजयोपदेशात् श्री खानदेशस्थामलनेर वास्तव्य तपागच्छीय श्रावक श्रेष्ठ रूपचंद्र मात्रा श्रीमती चूनाबाई श्राविक्या स्वभगिनी



सीताबाई सहितया पाषाणेष्टकामयी प्रतोली सहिता धर्मशालेयं कारिता तस्यां च क्रियमाणायां तदंतर्गत भूभागात् श्री जिनेश्वरगणां मूर्तयः ९ प्रादुर्भूतास्तासां प्रतिष्ठा महोत्सवेन सह पंचमी तपउद्यापन महोत्सवोप्यत्र समागत्य श्री संघमाकार्यं च महता द्रव्यव्ययेनाऽनय श्राविक्यौवकृतः लिखितोऽयं शिलालेखः ॥ पंन्यास श्री संपदविजय गणिना ॥

यह लेख मांडवगढ के जैन कारखाने के कंपाऊंड के बड़े दरवाजे के दाहिने तरफ की कोठड़ी के पश्चिम दरवाजे के ऊपर सफेद पाषाण के फरसी पर खुदा हुआ होकर दीवाल में लगा हुआ है ।

### मांडवगढ जैन मंदिर के अंदर रही हुई प्रतिमाओं के लेख

(१०) संवत् १५१३ वर्षे ज्येष्ठ वदी ५ मौढ ज्ञातिय स० लखमा लखमादे सुत स० समधरण भार्या माई सुत देवीसींग हिगां गुणी आहासा पावा प्रमुख कुटूंब युतेन सुश्रेयसे श्री अनंतनाथोदि चतुर्विंशतिपट्टः आगमगच्छ श्री जयानंदसुरेपट्टे श्री देवस्नसूरिगुरुपादासनकारितः प्रतिष्ठापितं श्रु ॥ श्रुभं भवतु ॥ सिरषिज वासूव्य—लेखके बीचमे सेर ९९११ लिखा हुआ है ।

यह लेख धातु की चौबीसी पर है ।

(११) संवत् १५३५ माह वदी ५ भोम प्राग्वाट ज्ञातिय सं. गोपा भार्या सलखणदे पुत्र गुणा भा० लीलादे पुना धा पूर्वज निमीतं श्री धर्मनाथ बिंबं कारापितं प्रतिष्ठितं तपागच्छे श्री लक्ष्मीसागरसूरिभि श्रुभं

यह लेख धातु की पंचतीर्थि पर है ।

(१२) संवत् १५२७ वर्षे आषाढ सुदी १० बुधे श्री श्री वंशे ॥ सं. कर्मा भार्या जासू पुत्र सं. पहिराज सुश्रावकेण भार्या गह्व पुत्र सं. महिपा सोपा रूपा सहितेन पत्नी पुण्यर्थे श्री अंचलगच्छाधीश्वरगणामुपदेशेन श्री सुविधीनाथबिंब कारितं प्रतिष्ठितं श्री संघेन श्री पत्तननगरे

यह लेख धातु की पंचतीर्थि पर है ।

(१३) संवत् १९२१ नाशके १७८६ प्रा माघमासे शुक्लपक्षे सप्तमी तिथौ गुरुवासरे अंचलगच्छे ज्ञातिपुत्र जेठना नातना जिन बिंबः ॥

यह लेख धातु की चार इंची छोटी प्रतिमा पर है

(१४) संवत् १३३३ वर्षे माघ सुदी ७ सोमे आचार्य श्री.....आगे नहीं बचता

यह लेख श्याम पाषाण की पार्श्वनाथ प्रसु की प्रतिमा पर है ।

(૨) પ્રાર્થના લેખ સંગ્રહ ( પાંચ લેખો )

સંપાદક :—

મુનિરાજ શ્રી જયન્તવિજયજી

(૪૪)<sup>૩૮</sup>

॥ સવંત ( સંવત ) ૧૬૬૬ । વર્ષે વસાષ ( વૈશાખ ) વિ(વ)દિ ૫ દિને  
સંવત્ ૧૬૬૬ના વૈશાખ વદિ ૫ ને દિવસે,

(૪૫)<sup>૩૯</sup>

સંવત ૧૫૪૫ વૈશાખ શુદિ ૩  
સંવત્ ૧૫૪૫ના વૈશાખ શુદિ ૩ ને દિવસે,

(૪૬)

સં ૧૪૯૯ ફા ૦ શુ ૨ ઉક્તેશજ્ઞાતીય સા ૦ કહુઆ મા ૦ કૌઠ્ઠુણ પુત્ર સા ૦  
રતનાકેત મા ૦ રતનાદે પુત્ર વીરમયુતેન સ્વશ્રયસે શ્રીકુંથુનાથર્થિવં કા ૦ પ્ર ૦ શ્રીસૂરિભિઃ ॥૧॥

૩૮. 'માદડી' ગામના મધ્યભાગમાં આવેલ 'સતીમાતા'ના દેરાના ચોતરામાં ડાબા હાથ તરફ ( દક્ષિણ દિશા તરફ ) માં જૈન મંદિરના દરવાજાના ઉત્તરંગાને એક સરેદ પથર ચણેલો છે. આ ઉત્તરંગાની વચ્ચે મંગલમૂર્તિ તરીકે શ્રી તીર્થંકર ભગવાનની મૂર્તિ કાતરેલી છે, તે ઉત્તરંગાપર ઉપર્યુક્ત લેખની પંક્તિ ખોદેલ છે. લેખ આટલો ખોદીને પડતો મૂકી દીધો જણાય છે. તેનાથી આગળ અક્ષરો ખોદ્યા જ નથી.

કોઈ પણ પડી ગયેલ જૈન મંદિરના ખંડિયેરમાંથી લાવીને આ ઉત્તરંગો અહીં ચણી દીધો હોય, તેમ સ્પષ્ટ જણાય છે. જે મંત્રી 'યશોવીર' 'માદડી' ગામમાં અંધાવેલા જિન-મંદિરનો જ આ ઉત્તરંગો હોય તો એમ માની શકાય કે ઉક્ત મંદિર વિ. સં. ૧૬૬૬ સુધી વિદ્યમાન હતું, ત્યારપછી કોઈ વખતે તેનો નાશ થયો હોવો જોઈએ.

૩૯. નંબર ૪૫, ૪૬, ૪૭ વાળા લેખો; 'જેઠપુર સ્ટેટ'ની 'સિયાણા' હકુમત તાખાના ગામ મોકલસર ના જૈન મંદિરના છે. તેમાંનો પહેલો લેખ મૂળનાયક શ્રી સહસ્ત્રકણા પાર્શ્વનાથજીની મનોહર મૂર્તિની એકપર ખોદેલો છે. આના જેવી જ બીજી પણ સહસ્ત્રકણા પાર્શ્વનાથજીની એક મૂર્તિ મૂ. ના. જીની જમણી ખાણમાં વિરાજમાન છે. અન્ને મૂર્તિઓ એક જોડીની હોવા સાથે અન્ને પર એ જ સંવત-મિતિ અને લગભગ સરખી હકીકતવાળા લેખો છે. એટલે કદાચ આ અન્ને મૂર્તિઓ એક જ ઘણીએ કરાવી હશે. પરંતુ સંવત-મિતિ પછીનો ભાગ અન્નેમાં ઘસાઈ ગયેલો હોવાથી વાંચી શકાયો નથી. નં. ૪૬-૪૭ ના લેખો એ જ મંદિરની ધાતુની પંચતીર્થીઓ પર ખોદેલા છે.

મોકલસર, 'જલોર'થી વાયવ્ય ખુણામાં લગભગ ૧૪ માઇલની દૂરી પર આવેલું છે. અહીં જિનમંદિર ૧, ઉપાસ્રય ૧, ધર્મશાલા ૧ અને શ્રાવકાનાં લગભગ ૧૫૦ ઘર છે. મંદિરમાં સુધારા-વધારાનું કામ ખૂબ જોર શોરથી ચાલે છે. સુંદર નકશીદાર પથરોથી બે મજલાનું મંદિર બનાવ્યું છે. હજુ કામ ચાલુ છે. કામપૂરું થતાં લગભગ એક લાખ રૂપિયાનો ખર્ચ થશે. મંદિર બનાવવામાં ગામના શ્રાવકો આટલો ખર્ચ કરે છે, પરંતુ હંમેશાં પૂજન કરનાર પૂજારી ઉપરાંત ફક્ત એક જ શ્રાવક છે. મુનિરાજોના વિહાર અને ઉપદેશની ખામ જરૂર છે.

સંવત ૧૪૯૯ ના ફાગણ શુદ્ધિ ૨ ને દિવસે, **ઓસવાલ** જ્ઞાતિના શાહ કડૂઆની ભાર્યા કીલૂણના પુત્ર, ( પોતાની ભાર્યા રતનાદે અને પુત્ર વીરમથી યુક્ત એવા ) શાહ રતનાએ, પોતાના કલ્યાણ માટે શ્રીકુંથુનાથ પ્રભુનું બિંબ ભરાવીને તેની કોઈ આચાર્યવર્ષ પાસે પ્રતિષ્ઠા કરાવી છે.

(૪૭)

॥ સં ૧૫૩૦ વર્ષે ફાગણ વદિ ૧૦ શ્રીજ્ઞાનકીય ગચ્છે ઓ૦ ઉસસગોત્રે સં૦ માઢા મા૦ પદમિણિ પુત્ર સં૦ હાસા પીથા દ્વામ્યાં પિતૃમાતૃશ્રેયોર્થે શ્રી શાંતિનાથ વિંબં 'કા૦ પ્ર૦ શ્રીસિઘ(દ્વ)સેનસૂરિપદ્દે શ્રીશ્રીઘનેશ્વરસૂરિભિઃ ॥ પ્રતિષ્ઠ(ષ્ટિ)તં

સંવત ૧૫૩૦ ના ફાગણ વદિ ૧૦ ને દિવસે, **શ્રીનાણુકીય ગચ્છ**, ૪૦ **ઓસવાલ** જ્ઞાતિ અને **ઉસસ** ગોત્રવાળા સંઘવી ભાડાની ભાર્યા પદમિણીના પુત્રો સંઘવી ૧ હાસા અને ૨ પીથાએ, પોતાના માતા-પિતાના શ્રેય માટે શ્રીશાંતિનાથ દેવનું બિંબ ભરાવ્યું. તેની **શ્રીસિદ્ધસેનસૂરિના** પદ્ધર **શ્રીઘનેશ્વરસૂરિ**એ પ્રતિષ્ઠા કરી છે.

(૪૮)

ૐ ॥ સંવત ૧૩૫૬ કાર્તિક્યાં શ્રીયુગાદિદેવવિધિચૈત્યે શ્રીજિનપ્રબોધસૂરિપટ્ટાલંકાર શ્રીજિનચંદ્રસૂરિ સુગુરૂપદેશેન સા૦ ગાલ્હણ સુત સા૦ નાગપાલ શ્રાવકેણ સા૦ ગહ્ણાદિ પુત્ર પરિવૃત્તેન મધ્યચતુષ્કિકા સ્વ૦ પુત્ર સા૦ મૂલદેવ શ્રેયાર્થે સર્વસંઘપ્રમોદાર્થે કારિતા ॥ આચંદ્રાર્કે નંદતાત્ ॥ શુભં ॥

સં ૧૩૫૬ ના કારતક સુદ્ધિ પૂનમને દિવસે, શ્રીઆદીશ્વર ભગવાનના મંદિરમાં, શ્રીજિનપ્રબોધસૂરિના પદ્ધર શ્રીજિનચંદ્રસૂરિના ઉપદેશથી, શાહ ગાલ્હણના પુત્ર, (પોતાના પુત્ર ગહણા વગેરેથી યુક્ત) શાહ નાગપાલ નામના શ્રાવકે પોતાના સ્વર્ગસ્થ પુત્ર મૂલદેવના કલ્યાણ માટે અને સમસ્ત સંઘના આનંદને માટે (આ મંદિરની નવચોક્કોઓ-માંની) વચલી ચોક્કો કરાવી. તે સૂર્ય-ચંદ્ર વિઘ્નમાન રહે ત્યાંસુધી વિઘ્નમાન રહેા.

૪૦ 'જોધપુર'સ્ટેટમાં આવેલા 'નાણા' ગામના નામપરથી **શ્રીનાણુકીય ગચ્છ** નિકળ્યો હોય, એમ જણાય છે.

**નાણા**, એ 'મારવાડ'ની નાની પંચતીર્થીમાંનું એક તીર્થ છે. ત્યાં શ્રીમહાવીર-સ્વામીનું આલિશાન-જંગી મંદિર અને તેમાં શ્રીમહાવીરસ્વામીની બહુ મોટી મનોહર મૂર્તિ વિરાજમાન છે. લોકોમાં આ 'હવિત સ્વામીનું' મંદિર કહેવાય છે. અહીં ઉપાશ્રયો, ધર્મશાળાઓ, જૈન સ્કૂલ, વર્ધમાન આયમિલ ખાતું અને શ્રાવકોનાં ઘણાં ઘરો છે.

: સુધારો :

ગયા અંકમાં છપાયેલ શ્રી શંખેશ્વર પાર્શ્વનાથ સ્તોત્ર ના પાંચમા શ્લોકનું પહેલું ચરણ પુરા જરાં નિવારિતું મુરારિરાજવન્દિતં છપાયું છે તેના બદલે પુરા જરાનિવારણાય કૃષ્ણરાજવન્દિતં એમ વાંચવું.

# તરંગવતીની કથા

[ ટૂંક સાર ]

સંક્ષેપકાર : મુનિરાજ શ્રી ન્યાયવિજયજી

તરંગવતીની આ કથાનું મૂળ સમર્થ આચાર્ય શ્રી પાદલિપ્તસૂરિજી કૃત “તરંગ-લોલાલા”નામક કથામાં છે. આ કથા તેમણે પ્રતિષ્ઠાનપુરના રાજા સાતવાહનની રાજ-સભામાં વાંચી સંભળાવી હતી. જે સાંભળી દરેક આશ્ચર્યમુગ્ધ થયા હતા. મહાકાવ્ય સમી આ મૂળ કથા તે આજે ઉપલબ્ધ નથી, પણ તેના ઉપરથી, સંસ્કૃત ભાષામાં શ્રીનેમિચંદ્રગણીએ સારરૂપે લખેલી તરંગવતીની કથા એના મૂળ કાવ્યની સરસતા અને અદ્ભુતતાનો અરજો પરિચય આપે છે. તરંગવતીની આ કથાનો ગુજરાતી અનુવાદ, સીધે સીધો મૂળ ઉપરથી કરેલો આપણને ન મળતાં, મૂળના જર્મન ભાષાના અનુવાદ ઉપરથી કરેલો આપણને મળે છે એ ખરેખર, આપણી કમનસીબી છે. જર્મન ભાષાનો અનુવાદ પ્રોફેસર લોચનેને કરેલો છે અને તેને ગુજરાતી ભાષામાં ઉતારનાર છે શ્રીયુત નરસિંહભાઈ ઈશ્વરભાઈ પટેલ. આટલું આપણે યામી શક્યા તે બદલ આપણે તેઓના આભારી છીએ.

અહીં સંક્ષેપમાં આપેલી કથામાં તે મુખ્યત્વે માત્ર એ કથામાંની ઘટનાઓ જ આપી છે. બાકી મૂળ કથામાં તે લેખકે ઠેકાણે ઠેકાણે પ્રસંગને અનુકૂળ તે તે રસોની એવી સરસ જમાવટ કરી છે કે વાંચનાર તન્મય બની જાય! એ તન્મયતાનો અનુભવ કરવા ઇચ્છનારે તે એ આખી કથા જ વાંચવી જોઈ એ.

તનમનાટ પેદા કરતા શૃંગારરસમાંથી ઉભી થતી આ કથા શાંત સૌરભભર્યા વૈરાગ્ય રસમાં પર્યાવસાન પામે છે. બીજા કથાસાહિત્ય કરતાં જૈન કથાસાહિત્યની અનેક ખુબીઓમાં “વૈરાગ્યમય અન્ત” એ પણ એક લાક્ષણિક વિશેષતા છે. તરંગવતીની કથા પણ એ વિશેષતાથી અક્તિત થયેલ છે. વાચકોને જરૂર આ કથા આકર્ષણ કરશે!

ન્યા. વિ.

કથાનો સમય વિશ્વવંદ પ્રભુ શ્રીમહાવીરદેવનો છે. કથાકાર આ કથાની શરૂઆત એવી અદ્ભુત રીતે કરે છે કે વાંચનાર એકદમ કથાના રસમાં તણાવા લાગે છે. વિશાલ ગગનપટમાંથી કોઈ તેજસ્વી દેવ વિમાન ઉતરી આવતું હોય અને પ્રેક્ષકોને આશ્ચર્યમાં મુગ્ધ કરી દેતું હોય તેમ એક ધનાઢ્યના વિશાલ મહાલયમાં સુંદરરૂપવાળી, સાક્ષાત રતિના અવતાર સમી, છતાં ત્યાગની જંગમ પ્રતિમા સમી, ચારિત્રના ઓજસમાં સ્નાન કરેલી અને ષ્ણાયર્થના આભૂષણથી અલંકૃત એવી મહાતપસ્વિની સમી એક વિદુષી સાધ્વી તપસ્થાના પારણા અર્થે માધુકરી — ગોચરી માટે પધાર્યાં છે. ગૃહલક્ષ્મી સમી શેઠાણીએ, બહાર આવી. વિનયપૂર્વક, તેમને ઘરમાં આવવા આમંત્રણ આપ્યું. આ મહાસતી સાધ્વીના રૂપ-પૂંજે તેના હૃદયમાં કંઈ કંઈ લાગણીઓ પ્રગટ કરી. તે વિચારવા લાગી : કેવું સુંદર રૂપ! મેં આ નગરમાં ઘણી રૂપરાણીઓ — રૂપગર્વિતાઓ જોઈ છે, પણ એ બધા કરતાં આ રૂપરાશિ, ખરે જ અનુપમ છે! તેણે વિનયથી સાધ્વીજીને કહ્યું : મહાસતીજી, મને કંઈક ઉપદેશ સંભળાવો! સાધ્વીજીએ ઉપદેશ સંભળાવ્યો, પણ શેઠાણીને એથી તૃપ્તિ ન થઈ હોય તેમ તેને સાધ્વીજીની પૂર્વ કથા પૂછવાનું મન થયું.

સાધ્વીજીએ પોતાનું મૂળ વૃત્તાંત શરૂ કરતાં પ્રથમ પોતાના સંસારીપણાના રાજવી વૈભવના ઠાકનું અને માતૃપિતાના પોતાના ઉપરના અવર્ણનીય પ્રેમનું વર્ણન કર્યું. ત્યારપછી પોતાની બાલ્યવસ્થા અને પોતાનો અભ્યાસ જણાવ્યો. બાલ્યાવસ્થામાં એણે જે વિદ્યાસંપાદન કરી હતી તે પોતે આ પ્રમાણે કહી સંભળાવી :—“જન્મ પછી બારમે વર્ષે મારી સમજશક્તિ એટલી અધી ખીલી ઉઠી કે મારા માટે ઉત્તમ પ્રકારના શિક્ષકો રાખવામાં આવ્યા. રીતસર ધીરેધીરે હું ગણિત, વાચન, લેખન, ગાન, વીણાવાદન, નાચ અને પુષ્પ-ઉછેરની કળા શીખી. વનસ્પતિશાસ્ત્ર અને રસાયણશાસ્ત્ર પણ મને શીખવવામાં આવ્યાં.” અઢાર વર્ષની ઉંમરે તેનું યૌવન વસંતની માફક ખીલવા લાગ્યું છતાં તેના ઉત્તમ સંસ્કારોએ તેને ભોગવિદ્યાસતી લાલસાઓથી અચાવી ને તેને ઉત્તમ માર્ગ અતાવીને ધર્મપરાયણા બનાવી !

એક વાર તેના પિતા પાસે કોઈએ એક સુંદર પુષ્પ આણ્યું. એ પુષ્પની પરીક્ષા માટે તે બાળા પાસે આવ્યો. બાળાએ તે પુષ્પની પરીક્ષા કરી તેનો અદ્ભુત કાયડો ઉદ્ભવ્યો, એ વખતે બાળાનું બુદ્ધિપ્રાગલ્ભ્ય જોઈ પિતા ખુશી થયો. ત્યારપછી બીજે દિવસે પોતે પોતાની ઇચ્છાથી, રમઝમ કરતા રથમાં બેસી, એ પુષ્પ તપાસવા ઉદ્ધાનમાં — બગીચામાં જતી હતી ત્યાં અચાનક એક મહાન સરોવરની પાળે તેણે એક ચક્રવાકના યુગલને જોયું. એ યુગલ જોતાં તેના હૃદયમાં કંઈક સ્ફુરણ થઈ. એ બંનેને નિર્મલ પ્રેમ જોઈ તેને ખૂબ વિચાર થયો અને એ સંબંધી વિશેષ ઊઠાપોઠ કરતાં તેને જાતિસ્મરણ-જ્ઞાન ઉત્પન્ન થયું આ જાતિસ્મરણ-જ્ઞાનના બળે તેણે પોતાનો પૂર્વ ભવ જોયો અને તે ત્યાં જ મૂર્છામાં ઢળી પડી. સખીઓએ તેને પવન અને ઠંડા પાણીથી સચેતન કરી. જગૃત થયા પછી તેની સખીઓએ આમ થવાનું કારણ પૂછ્યું છતાં યુવાન બાળા કાંઈ બોલી નહિ અને ગાઢ વિચારમાં લીન બની ગઈ. સખીએ ફરી ફરી ખુબ આગ્રહ કરી છેવટે સમ આપ્યા એટલે બાળાએ કહ્યું કે —

હું પૂર્વભવમાં ગંગાતીરે ચક્રવાકી હતી. મને એક સુંદર ફૂટડો પતિ હતો. અમારા બંનેનો એવો ગાઢ પ્રેમ હતો કે ન પૂછે વાત. મારો પતિ તરવામાં કુશળ હતો. હું પણ નિરંતર તેની સાથે જ ઉડતી, નદીમાં તરતી, નહાતી અને સ્વર્ગથીએ અધિક આનંદ લૂંટતી હતી. ત્યાં મારા કમભાગ્યે, અચાનક એક દિવસે, યમહૃતના અવતાર સમા નિષ્કુર પારધીના એક અબળણ્યા બાણથી મારા પતિ દેવ વિધાયા; અમારા સ્વર્ગીય સુખનો નાશ થયો. હાય! તે કાળ સંભારતાં મારું હૃદય કોરાઈ ગયું છે. (અહીં સ્ત્રી સહજ પતિ પ્રત્યેનો પ્રેમ પ્રગટ કરતાં તેની આંખમાંથી ચોધાર આંસુ પડવા લાગ્યાં) મેં ઘણું ઘણું કારમું રૂદન કર્યું, ઘણો વિલાપ કર્યો. મારી આંચથી મેં તેમને વાગેલું બાણ ખેંચી કાઢ્યું. પરંતુ ભાવીએ ચારી ન આપી. અન્તે થોડી પાંખો ફફડાવી મને તે એકલી મુકી ચાલ્યા ગયા. અમારા બંને વચ્ચે કમળનું પાંદડું પણ આવે તો અમને વિયોગ સાલતો તો પછી તેમના સિવાય મને કંમ ચાલશે. એ વિચારે મેં તેમની પાછળ માથું પછાડ્યું. આકરૂં રૂદન કર્યું. આ બાણુ પારધીને, નિર્દોષ ચક્રવાકને માર્યા અદ્ભૂત ખૂબ શોક થયો અને તેણે ચક્રવાકને લઈને લાકડાં એકઠાં કરી અગ્નિ સંસ્કાર કર્યો, ત્યારે હું (ચક્રવાકી) પણ તેની ચિતા પાછળ ફેરા ફરી ચિતામાં પડી

બળી મરી. પતિની સાથે આગમાં બળવા છતાં મને તે ટાઢો હીમ જેવો લાગ્યો, કારણ કે હું મારા પતિની સોડમાં હતી.

આ પ્રમાણે પોતાને પૂર્વ ભવ કહ્યા પછી બાળાએ આગળ ચલાવ્યું :— “ ત્યાંથી મરી હું અહીં આવી જન્મી. મારા પૂર્વભવના પ્રેમીને મેળવવાની આશામાં જ હજી સુધી હું કુંવારી રહી છું અને જે તે ટૂંક વખતમાં નહિ મને તો શ્રીતીર્થકર પ્રભુએ અતાવેલા માર્ગે ચાલવાની — દીક્ષા લેવાની અને આત્મકલ્યાણ કરવાની મારી ઇચ્છા છે.” અહીં જ તે બાળાને સાચો પ્રેમ પ્રગટ થાય છે. પૂર્વ ભવનો પ્રેમી મને તો જ પરણવું, નહિ તો ત્યાગી — સાધ્વી જીવન ગાળવું એ કાંઈ રમત વાત નથી. સાધુ થવું એ મોંઠાની વાતો કે અચ્ચાંના ખેલ નથી. મનના સંયમપૂર્વક નિર્ભય ચારિત્ર અને આજીવન ઉન્નવલ અહમર્યા પાળવું, આ ભાવના પ્રગટ થવી એ જ એ બાઈના ઉચ્ચ સંસ્કાર અતાવવા અસ છે. એક સાત્ત્વિક પ્રેમાળ ભક્ત જન જેમ પ્રભુને હુંઢવા જોગી અને છે તેમ બાળા પણ અન્તે સાધ્વી થવાનું જ જણાવે છે, એ જ એના અપાર્થિવ પ્રેમની કસોટી છે.

ઉઘાનમાંથી તે પોતાની સખીઓ અને માતા સાથે ઘેર આવી, પણ તેને ક્યાંય એન પડ્યું નહિ. એકની એક પુત્રીની આ દશા જોઈ પિતા અત્યંત દુઃખિત થયા. અનેક સારા વૈદ્યો પાસે તેની ચિકિત્સા કરાવી પણ ન્યાં વ્યાધિ હોય તેની જ ચિકિત્સા અને તેનાં જ ઔષધો હોય. આ તો માનસિક વ્યાધિ હતો. તેનું ઔષધ તો પતિના મેળાપ સિવાય બીજું નહોતું. તરંગવતી વધુ કૃષ થતી ગઈ. તેનું ૩૫ જોઈ વ્રણાંય માઆપોએ કન્યાનું માગું કર્યું. પરંતુ તરંગવતીના પિતાએ ઘઘાને સ્પષ્ટ રીતે ના ભણી હતી. આ ના ભણવાનાં એ કારણો હતાં : એક તો કન્યાને યોગ્ય ધાર્મિક વૃત્તિવાળા વરને અભાવ અને બીજું સામાનાં કુળ અને પૈસો પોતાના જેવાં-જેટલાં નહોતાં.

તરંગવતી એટલી ઝુરતી કે તેને ખાવું પીવું પણ ઝેર જેવું જ લાગતું. માત્ર માતા પિતાને રીઝવવા તે, વેદનાભર્યા હૈયે, એ કોળીયા ખાતી-પીતી કે ખેસતી-ઉકતી. બાકી તો તેનું જીવન તેને અહુ કારમું લાગતું. તેને એકલા પડચા રહેવાનું જ મન થતું. અને છતાંય માતાપિતા તરફની ભક્તિ તેનામાં દેખાઈ આવતી હતી. તે “ મારા લીધે મારા પૂજ્ય માઆપને દુઃખ ન થાય ” એ ભાવના સદાય મનમાં રાખતી. અને એટલા જ માટે અથવા તો લન્મના કારણે તેણે પોતાની ગુપ્ત વાર્તા પોતાની પ્રીય સખી સિવાય કદી પણ બીજાને નહોતી જણાવી. તરંગવતીએ આમ દુઃખભર્યા દિવસોમાં પોતાના આતુર્યથી — ચિત્રકળાના પ્રતાપે પોતાના સ્મરણચિત્રો ( પૂર્વ ભવની બધી વિગતો — ચક્રવાકી અને ચક્રવાક યુગલ, નદી, પારધી અને તેના બાણથી ચક્રવાકનું મૃત્યુ, ચક્રવાકીનું તેની પાછળ બળી મરવું ઇત્યાદિ ઇત્યાદિ. ) ચીતરી પોતાની સખી સાથે કાર્તિકી પૂર્ણિમાના કૌમુદી મહોત્સવના મેળામાં મોકલાવ્યાં. બીજી બાણુ તેણે પોતાના ધાર્મિક સંસ્કારોના કારણે, પોતાની કામનાસિદ્ધિને માટે ૧૦૮ આયંબીલનો મહાન તપ શરૂ કર્યો. જૈનશાસ્ત્રકારો તપશ્ચર્યાને કર્મ અપાવવાનું સબલ કારણ માને છે : તેથી પાપ દૂર થાય છે, કર્મ કપાય છે અને વિદ્યોનો નાશ થાય છે. આર્યબાળા પતિના વિરહમાં સાધ્વી જેવું ત્યાગમય જીવન જીવે તેમાં જ તેની મહત્તા છે. આ તપ ઉપરાંત

કાર્તિકી પૂર્ણિમાએ પુષ્કળ દાનધર્મનું આચરણ કર્યું. એને માટે તેણે પોતે જ કહ્યું કે ટુંકામાં કૌમુદિપર્વ અમારા માટે તો પૈસાની કાથળી છોડી મુકવાનો, દાન આપવાનો અને પવિત્રતા ખિલવવાનો દિવસ હતો.

આ કૌમુદીપર્વ એ લાગ્યશાળી બાળાને ફળ્યું. પતિની શોધખોળ માંડ કરેલી તેની બધી મહેનત સફળ થઈ. તેનું તપ, દાન, શીયલ આદિ બધુંએ સાર્થક થયું. મેળામાં ગયેલ સખીએ તેને વધામણી આપી ત્યારે તે ખોડી: મારો શોક હવે ટલ્યો છે અને આનંદ ઉપભવ્યો છે, કારણ કે મારો સ્વામી મને ચાહે છે. ખરેખર, સ્ત્રીએને પતિ પ્રેમ અમૃત અને જીવન કરતાં પણ વધુ સંતોષપ્રદ લાગે છે. કૌમુદી-મહોત્સવમાં પેલી ચિત્રમાળા જોઈ બધા માણસો છક થઈ ગયા હતા. એક યુવાનોનું જીથ હસતું ખીલતું ચાલ્યું આવતું હતું તે એ ચિત્ર જોવા થોભ્યું. તેમાં તરંગવતીનો પૂર્વલવનો પતિ — ચક્રવાક પણ અહીં આવેલ હતો. એ ચિત્રમાળા જોઈ તેના હૃદયમાં પ્રેરણા થઈ અને તેને જાતિસ્મરણજ્ઞાન થયું. તેને પણ મૂર્છા આવી. તે મૂર્છા વળતાં મિત્રોએ એને એ મૂર્છાનું કારણ પૂછ્યું. છેવટે ચિત્રો વેચનાર દાસીને આ ચિત્રનાર કોણ છે એમ પૂછી ચીરાતા હૃદયે તે ઘેર ગયો. એ ઘેર આવી રીસાઈ ગયો. માળાપે સમજાવી વાત કઢાવી અને બીજે જ દિવસે એ છોકરાનો આપ — ધનદેવ તરંગવતીના પિતા પાસે તરંગવતીનું માગું કરવા ગયો. તેણે કહ્યું “તમારી દીકરી તરંગવતીનું મારા દીકરા પદ્મદેવ માટે માગું કરું છું.” આ સાંભળી પુત્રીનું હિત ઈચ્છતા તરંગવતીના પિતાએ “નિરંતર પરદેશ સફર કરનારને અને સમાન કુળ વગરનાને કોણ કન્યા આપે” એમ કહી એ ધનાઢય શેઠ ધનદેવને ના સંભળાવી દીધી. ધનદેવ ખાલી હાથે પાછો આવ્યો. અને આવા સમાચાર સાંભળી પદ્મદેવને ઘણો આઘાત થયો. તે વિચાર કરવા લાગ્યો કે નગરશેઠ કુળ અને પૈસામાં મસ્ત રહી પોતાની પુત્રીનું પણ હિત નથી ઈચ્છતો!

આ બાબુ તરંગવતીને પણ એટલું જ દુઃખ લાગ્યું. સખીએને મોઢે આ સમાચાર સાંભળી રડતાં રડતાં “પૂર્વલવમાં મારો સખા બાણ વાગનાં ન જીવી શક્યો તેથી હું પણ ન જીવી શકી. પક્ષીના લવમાં પણ હું એની પાછળ બળી મરી તો પછી આ માનવ લવમાં હું એમના વિના શી રીતે જીવી શકું?” આ બોલતાં તેના હૃદયમાં શંકા થઈ આવી કે મારા પિતાએ ના પાડી તેથી રખેને રાત્રે એ આપઘાત કરે અને મારે તેની સહચરી થવું પડે? ખરે જ, સાચા સ્નેહીઓ લલેને ગમે તેટલાં દૂર બેઠાં હોય, છતાં એકબીજાના હૃદયના આકર્ષણથી એકબીજાનાં વાતો અને ભાવો બાણી શકે છે. “પોતાનો સ્નેહી આપઘાત કરશે.” એ શંકા તરંગવતીની ખોટી નહોતી.

તરંગવતી અને પદ્મદેવ હજી કદી પ્રત્યક્ષ મલ્યાં ન હતાં, છતાં લજ્જા છોડી તરંગવતીએ પોતાના પ્રેમીને આશ્વાસન આપવા માટે એક પત્ર લખીને પોતાની સહચરી સાથે મોકલ્યો. પત્ર લખીને સખી પદ્મદેવને ઘેર આવી. અહીં તેણે જોયું કે પદ્મદેવની સ્થિતિ પણ તરંગવતી જેવી જ દુઃખદ હતી. પદ્મદેવનો મિત્ર રડતા પદ્મદેવને લખીને

બેઠો હતો. તરંગવતીનો પત્ર તેણે રડતાં રડતાં લીધો, પત્ર જોઈને પદ્મદેવે પોતાની કક્કેડી સ્થિતિ વર્ણવી બતાવી: “પણ મેં તો આપઘાત કરવાનો નિશ્ચય કર્યો હતો, કારણ કે તરંગવતીને મળવાની બધી આશાઓ પડીભાંગી હતી. દિવસે મારી આપઘાતની યોજના કરતાં કોઈ મને અટકાવે એ બીકથી રાત્રે બધાં ઉઘી જાય ત્યારપછી આપઘાત કરવાનો સંકલ્પ કર્યો હતો.” તે આવેશમાં આવી તરંગવતીને સંબોધી બોલવા લાગ્યો: “જેના મરતાં તું સતી થઈ અને જેને તેં આટલા મોઢે મૂલે ખરીદી લીધો છે તે તો તારો દાસ થવાનું સ્વીકારે છે.” આ પમાણે પદ્મદેવની સ્થિતિ નિહાળી, પ્રત્યુત્તર લઈ સખી તરંગવતી પાસે આવી અને તરંગવતીને પદ્મદેવની સ્થિતિનું વર્ણન કહી સંભળાવ્યું અને પત્ર આપ્યો. પત્રમાં પદ્મદેવે પોતાની વિઠ્ઠળ દશા સચોટ રીતે વર્ણવી હતી. એ પત્ર વાંચી તરંગવતીએ કંઈક નિરાશા અનુભવી. તેના ગ્હેમી મનમાં શંકા થઈ કે દૂર બેઠાં સ્નેહ કંડો પડી જાય છે. આથી આ માટે કંઈક પગલું ભરવાનો વિચાર તેને થઈ આવ્યો, પરંતુ ચતુર સખીએ તેને સચોટ ઉત્તર આપ્યો કે “ઉતાવળ કરવામાં, વગર વિચારે, સાચાં સાધન વિના, કોઈ કામ કોઈ ઉપાડે તો એ સફળ થાય તો પણ પરિણામ કડવું આવે છે.” આમ કહી ભાવિ જે થવાનું હતું તેનું અવ્યક્ત સૂચન સખીએ કર્યું.

આમ છતાં રાત્રિના તરંગવતીની પતિને મળવાની આતુરતા અસહ્ય બની ગઈ. તેણે પોતાની સખીને પદ્મદેવને ત્યાં પોતાને લઈ જવાને આગ્રહભરી વિનવણી કરી. આવી રીતે પતિના ઘેર જતાં તેને અનેક પ્રકારના વિચાર આવ્યા. આમાં તેને પોતાના મનની નબળાઈ જેવું લાગ્યું. તેનું હૃદય કાંપતું હતું; છતાં તે લાચાર હતી. એટલે છેવટે ન છૂટકે સખી તેને પદ્મદેવના મહેલે લઈ ગઈ. ત્યાં જઈને પદ્મદેવને જોતાં જ તેના હર્ષના પારાવારમાં ભરતી ચડવા લાગી. અને જણા ખૂબ આનંદ-સ્નેહ-થી મળ્યાં અને છેવટે પોતાનું દંપતીજીવન સુખભર્યું બનાવવા બીજે કોઈ સ્થળે નાસી જવાનો સંકલ્પ કર્યો.

પદ્મદેવે પોતાનું ખુબ કીમતી કવેરાત પોતાની સાથે લીધું અને અને જણાં સાથે ગંગા કિનારે આવી પહોંચ્યા, અને હોડીમાં બેસી આગળ વધવા લાગ્યા. (પદ્મદેવ વહાણવટીને ધંધો સારી રીતે જાણતો હતો, કારણકે સદાય તેને વહાણમાં બેસી પરદેશની સફરે જવું પડતું. તેમાં અનેકવાર વિદ્વો આવતાં અને તેથી એણે વહાણ હંકારવાનું સારી રીતે શીખી લીધું હતું) રસ્તામાં અનેને ત્રણાં અપશુકનો યયાં, છતાં કોઈ પણ અપશુકનને ગણકાર્યાં સિવાય તેઓ આગળ વધવા લાગ્યાં. અને જણાએ રસ્તામાં જ ગાંધર્વલક્ષ્મ કરી લીધાં હતાં. અને જણાં હોડીમાં બેસી ઉચે આભ અને નીચે પાણીમાં ચાલતાં, મોજાંઓ જોતાં, તારાનો ઝગઝગાટ જોતાં, ડોકીયું કરતાં તારાઓના પ્રતિબિંબ નદીમાં જોતાં, આનંદ લૂટતાં બીજે દિવસે બીજે કાંઠે પહોંચ્યા. પરંતુ ત્યાં તો સુખને બદલે અચાનક દુઃખ જ તેમના માટે તૈયાર હતું. તેઓ ચાંચીઆના હાથે લુંટાયા, નર્કાગારથી પણ અધિક દુઃખ સહન કરવું પડતું. માથે સિતમો વર્ષવા લાગ્યા. સામે દુઃખના ડુંગરા સિવાય કશું નજરે ન દેખાયું. છતાં તરંગવતીનો પતિ-પ્રેમ સૂર્યના પ્રકાશની



જેમ પ્રકાશતો રહ્યો. અને જણાવે એ નિષ્કુર ચાંચીઆએ તે વખતે ખુબ માર માર્યો. તરંગવતીએ ચાંચીઆના સરદારને કહ્યું: “તમારે જે કરવું હોય તે મને કરો, પણ મારા કમળના ડાંડલાસમ કોમળ પતિને કાંઈ પણ દુઃખ ન આપતા.” પણ એ પથ્થરહૃદયી ચાંચીઆને તેનાં વચનોની કાંઈ કિંમત ન હતી. ચાંચીઆના સરદારે આ પુણ્યશાળી યુગલને ખત્રીસ લક્ષણું સમજી પોતાની માતા-કાળકાદેવીના ભોગને યોગ્ય માની સખત ચોકીપહેરા નીચે બાંધી રાખ્યું.

જે વખતે બન્નેને વધ — ભોગને યોગ્ય કરાવી બાંધ્યાં, તે વખતનું તરંગવતીનું હૃદયભેદક રૂદન પથ્થર પણ પિગળાવે તેવું હતું. (આ વખતે રાવણ સીતાજીને હરી જતો હતો તે વખતનું સીતાજીનું હૃદયભેદક રૂદન અને રામચંદ્રજી જ્યારે પ્રથમ જાણે છે કે આખી પંચવટીમાં ક્યાંય સીતાજી નથી ત્યારે જે વિલાપ કરે છે તે યાદ આવે છે.) તરંગવતી સાથેના ખીન્ન કેદીઓએ તેને આશ્વાસન આપતાં તેમનું મૂળ જીવન પૂછ્યું. તરંગવતીએ પોતાના પૂર્વ ભવથી માંડી બધી કથા હૃદયદ્રાવક રીતે કહી સંભળાવી. આ હૃદયદ્રાવક કથા સંભળી પથ્થરહૃદયી ચોકીદાર પણ ગમગળો થઈ ગયો, તેના હૃદયમાં દયાના અંકુર પ્રગટ થયા. તેને પોતાના પાપી જીવન ઉપર તીરસ્કાર છૂટ્યો, અને એ બન્ને નિર્દોષ જીવોને છોડી દેવાનું મન થયું. તેણે વિચાર્યું “અરે આવાં ઘેર પાપો કરી, આવા નિર્દોષ જીવોનો ભોગ લઈ હું કેવો પાપી બનું છું.” તેણે તરંગવતીને ખાનગીમાં બોલાવી આશ્વાસન આપી પોતે લાગ મળતાં તેમને છોડી દેવાનું કહ્યું. યોગ પણ બરાબર મળી ગયો. રાત્રે બધા ચાંચીઆ દાડમાં ચકચૂર બન્યા હતા. એ સમય સાધી ત્રણે જણાં (પતિ, પત્નિ અને ચોકીદાર) ત્યાંથી નાશી છૂટ્યાં. ચોકીદાર તેમને ગાઢા જંગલમાંથી પરિચિત માર્ગે બહાર કાઢી માર્ગે ચઢાવી એક ગામ પાસે મૂકી આવ્યો. બન્ને જણા પાસેના ગામમાં આનંદથી ગયાં. ત્યાં તો તેમનાં માઆપ તરફથી શોધવા નીકળેલ એક માણસ પત્ર સાથે તેમને મળ્યો. પત્ર વાંચી બન્ને જણા રથમાં બેસી ઘર તરફ રવાના થયાં. પાછા ફરતાં રસ્તામાં એક સુંદર શિખર નિહાળ્યું, એની ઉપર હજારો પંખીઓ સુંદર ગાન — પ્રભુમુતિ કરી રહ્યાં હતાં. તેઓ ત્યાં ગયાં અને એ શું છે એમ પૂછતાં માલમ પડ્યું કે “આપણા ધર્મના અન્તિમ પ્રચારક — પ્રવર્તક શ્રીવર્ધમાનસ્વામી સંસારનો ત્યાગ કરીને જ્ઞાન પામ્યા પૂર્વે અહીં એમણે વાસ કર્યો હતો અને તેથી આ જગ્યાનું નામ વાસાલિક પડ્યું; જિનેશ્વર ભગવાનના સ્મરણમાં હજારો દેવ, કિન્નર ને માણસો આ વડની પૂજા કરે છે.” આવા તરણનારણ તીર્થનાં વંદન કરી, આત્મિક શાંતિ મેળવી તેઓ આગળ વધ્યા.

અનુક્રમે તેઓ પોતાના ગામ આવી પહોંચ્યાં. માઆપને પણ આ સમાચાર સંભળી ખુબ હર્ષ થયો. ઘેર આવી પોતપોતાની આપવીતી કહી સંભળાવી. બન્નેનાં માઆપ આ હૃદયદ્રાવક કથાની સંભળી ખુબ દુઃખી થયાં. થોડા સમય પછી તરંગવતીએ પોતાની સખીને પોતાની પાછળ શું બન્યું તે પૂછતાં ટૂંકમાં સખીએ બધો વૃત્તાંત કહી સંભળાવ્યો અને છેવટે કહ્યું “તારી માએ શોક કરતાં તને જ દોષ આપતાં કહ્યું હતું કે — નદી જેમ પોતાના કિનારાને જ ડુબાડે છે તેમ બ્રષ્ટ નારીઓ પોતાના કુળની આખરને ડુબાડે છે. અશુદ્ધ પુત્રી ઊંચા અને ધનવાન કુળને હાનિ કરે છે; અને પોતાના

બ્રહ્મ આચારથી આખા કુળને, સાફ હોય તોય, કલંક આણે છે; તેથી એ રૂપને શોભાવતી નથી. સાચું જ કહ્યું છે કે કલ્પનાના સ્વપ્ન ઉપર અને સુંદર મૃગજલ ઉપર નેટલો વિશ્વાસ રખાય એટલો જ વિશ્વાસ અંચળ અને ચતુર નારી ઉપર રખાય.” આ સાંભળીને તરંગવતી કંઈક શરમ પામી. ધીમે ધીમે અધું શાન્ત પડી ગયું. ધરસંસાર ખુબ સારી રીતે ચાલવા લાગ્યો. દંપતીએ શ્રાવકનાં વ્રતો સ્વીકાર્યાં.

વસંતઋતુ ખીલી હતી. ક્રોચલ ટહુકવા લાગી હતી. વૃક્ષરાજ ખીલી ઉઠી હતી. આવે વખતે તરંગવતી અને પદ્મદેવ ઉદ્યાનમાં ફરવા ગયાં હતાં ત્યાં એક તપસ્વી મહર્ષી સાધુને અને જણાએ ભાવથી વિનયપૂર્વક વંદન કરી તેમને ઉપદેશ સાંભળ્યો. સાધુજીના મુખ ઉપર અપૂર્વ ત્યાગ અને શાંતિ ઝળહળતાં હતાં તેમને ઉપદેશ સચોટ હતો. તેમની વાણીમાં અમૃતભયું હતું. આ સાધુ મહાત્મા તે ખીજ કોઈ નહિ પણ દંપતીને દુઃખમાંથી ઉગારનાર કુંટારો જ હતો. દંપતીને જંગલની બહાર મૂક્યા પછી તેને વિચાર થયો કે “હવે હું જન્મશિ તો બધી વાતની ખબર પડી ગઈ હશે અને સરદાર મને મારી નાખશે. આ જીંદગીમાં ઘણાં પાપ કર્યાં છે, હવે તો કંઈક પ્રણય ધર્મ કરું” એમ શુભ ભાવના તેનામાં જાગી અને તે અધું છોડી સાધુ થયો. વિહાર કરના તે ત્યાં પહોંચ્યા હતા. સાધુજીને અમૃતમય ધર્મોપદેશ સાંભળી દંપતીને વૈરાગ્ય ઉપન્યો અને તેઓએ કહ્યું “હે પ્રભો! આપે જ અમને તે વખતે દુઃખમાંથી ઉગાર્યા હતા તો હવે જન્મમરણના ભયંકર દુઃખ-માગરમાંથી અમને મુક્તિ આપો. અમારી હવે મોક્ષે જવાની ઈચ્છા છે. તીર્થંકરોએ બતાવેલા પવિત્ર માર્ગે અમને દોરી જાઓ. સાધુ જીવનનાં વિવિધશાસ્ત્રને અમારી સંયમ યાત્રાનાં ભાથું હો!” આ જ સાધુ પૂર્વભવે ચક્રવાકને મારનાર પારથી હોને. અને પછીના ભવે એ જ બચાવનાર થયો. છેવટે સાધુજીએ આર્હતી દીક્ષાનું મહાત્મ્ય વર્ણવ્યું અને દીક્ષા લેવા સમજાવ્યા. આ ઉપદેશ દંપતીને અમૃતરૂપે નીવડ્યો. અનેએ આત્મકલ્યાણકારી આર્હતી દીક્ષા લીધી. પવનવેગે આ સમાચાર ગામમાં પ્રસર્યાં. અનેનાં માઆપ આવ્યાં. તરંગવતીના સાસુ સસરાએ પુત્રને કહ્યું કે દીકરા આ તને કાણે શીખવ્યું, અમારી સાથે રહેવું તને ના ગમ્યું? એવું તે તને શું દુઃખ પડ્યું કે તું કંટાળીને સાધુ થઈ ગયો. આવી રીતે પુત્રને ખુબ ઉપાલંબ આપ્યો. પછી સંસારી વાસનાઓની લાલચો બતાવી, ખુબ છાતીકાટ રૂદન કર્યું. પણ પુત્રે કહ્યું : આપુ, ધનમાલથી પણ દુઃખ થાય છે. ધન પ્રાપ્ત કરતાં પણ દુઃખ, અને સાચવતાં પણ દુઃખ છે. તે ન્યારે નાશ પામે છે ત્યારે પણ દુઃખ થાય છે. અને મા, આપ, ભાઈ, વહુ, છોકરાં ને સગાંવહાલાં એ તો નિર્વાણના માર્ગમાં બંધનની સાંકળો છે. આ ધર્મોપદેશ ફરેક જીવે ત્રહણ કરી આચરવા જોવો છે.” અને તેમણે વિહાર કર્યો. તરંગવતીને ગીતાર્થ સાધવીજીને સોંપી. આ કથાની નાથીકા એ જ તરંગવતી સાધવીના રૂપમાં ધનાઢયને ત્યાં વહોરવા આવેલ હતી. તરંગવતીની આ બધી આપવીતી સાંભળી સાંભળી શેઠાણીનું હૃદય પીગળી ગયું. પોતે સાધુમાર્ગે ચાલવા અશક્ત હોવાથી ગૃહસ્થનાં વ્રતો સ્વીકારી આત્મકલ્યાણનો માર્ગ સ્વીકાર્યો.

## સમાચાર

**પ્રાતઃકાંડા અને ધ્વજરોપણ :** (૧) અમરાવતી (વરાડ)માં વૈશાખ સુદી દશમના દિવસે શ્રી પાર્શ્વનાથ ભગવાનના દેરાસરથી પ્રતિષ્ઠા કરવામાં આવી. (૨) રણુનીટીકર (ધ્રાગધ્રા)માં વૈશાખ સુદી ખીજના દિવસે ધ્વજરોપણની ક્રિયા કરવામાં આવી. આ વખતે મુનિરાજ શ્રી ધરણેન્દ્રવિજયજી ત્યાં પધાર્યા હતા.

**દીક્ષા :** (૧) નાસિકના રહેવાસી, આખ્યલ્લચારી ભાર્ષ દેવીચંદ્રજી ચંદનમલજી સોલંકીએ વૈશાખ સુદી દશમના દિવસે તથા (૨) ફલોધિના રહીશ કોચર લક્ષ્મીચંદ આમકરણે વૈશાખ સુદી તેરસના દિવસે ભુજ કચ્છમાં પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી વિજયકનક-સૂરિજી પાસે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. (૩) આરંભડાવાળા ભાર્ષ વિઠ્ઠલદાસે વૈશાખ વદ છઠના દિવસે મહેસાણામાં પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી વિજયભક્તિસૂરિજી પાસે દીક્ષા ગ્રહણ કરી. તેમનું નામ વિનયવિજયજી રાખવામાં આવ્યું છે. (૪) ભાર્ષ માંગીદાલજી નામના ક્ષત્રિય જૈને વૈશાખ સુદી દશમના દિવસે લક્ષ્મણીતીર્થમાં ઉપાધ્યાય શ્રી યતીન્દ્રવિજયજી પાસે દીક્ષા અંગીકાર કરી. તેમનું નામ મનહરવિજયજી રાખવામાં આવ્યું છે.

**આચાર્ય પદવી :** મુનિરાજ શ્રી સાગરચંદ્રજી મહારાજને અમદાવાદમાં શામળાની પોળના ઉપાશ્રયમાં જૈન સુદી ચોથના દિવસે આચાર્ય પદવી આપવામાં આવી.

**કેળવણી માટે જ્ઞાન :** શ્રી જૈન શ્વેતાંબર કોન્કરન્સે તાજેતરમાં ઘડેશી એ વર્ષની શિક્ષણ પ્રચારની યોજના માટે પચીસ હજાર રૂપિયાની જરૂર હતી, તે રકમ એક (પોતાનું નામ નહિ આપવા ઇચ્છતા) સહૃદય તરફથી કોન્કરન્સને મળી ગઈ છે.

**મહાવીર જયંતીના રજા :** વર્ધા મ્યુનિસિપાલિટીએ મહાવીર જયંતીના દિવસને રમના દિવસ તરીકે મંજૂર કર્યો છે. ખીજે પણ આવું થાય એ માટે જૈન સંઘે પ્રયત્ન કરવો જોઈએ.

## સ્વીકાર

**જિનભક્તિનું સુંદર સ્વરૂપ :** સંયોજક અને પ્રકાશક : રમણુલાલ પાનાચંદ. ઠે. મોટા દેરાસર પાછળ. ગોધરા : પ્રકાશક શ્રી ઋદ્ધિવિજયજી જૈન પુસ્તક ભંડાર, ગોધરા : ભેટ.

**પ્રભુ પ્રાર્થના :** સંત્રહક-પંચ અમૃતલાલ મોહનલાલ સઘવી. પ્રકાશક : ગોવિંદજી વીરચંદ સંઘવી, વનાળા કામદાર. લીંબડી. પ્રકાશક તરફથી ભેટ.

Regd. No. B. 3801

श्रमणु लगवान महावीरस्वामी

ना

जवन संभंधी

अनेक लेखोना संग्रह ३५

सुंदर प्रकाशन

श्री जैन सत्य प्रकाश

नो

श्री महावीर निर्वाण विशेषांक

: ओक वधु अलिप्राय :

“इम विशेषांक में भगवान् महावीर के जीवन पर अनेक अच्छे अच्छे विद्वानों के, जुदी जुदी दृष्टि से, लेख हैं। वाकै ऐम अंक महावीर के जीवन का संसार के सामने उपस्थित करने में बडे सहायक हैं। यह अंक बहुत उपयोगी व अच्छा है। जनता को अवश्यमेव ऐम अंकों को इज्जत करना चाहिए।”

—जैनध्वज, ता. १-६-३७

सनाभसो पानां, सुंदर छापकाम, जिया कागजो

छतां छूटक भूख्य

टपालजन्य साथे मात्र तेर आना.

मात्र मे इपियाना वार्षिक लवाणभथी श्री जैन सत्य

प्रकाशना आडकाने यालु अंग तरीके

आपवामां आवशे.

लेखो :

श्री जैनधर्म सत्यप्रकाशक समिति

जेशिंगलार्थनी वाडी, धीकांटा

अमदावाड (गुजरात)